भारत संघ

बनाम

हरभजन सिंह ढिल्लों

(Union of India

Vs.

Harbhajan Singh Dhillon)

(21 अक्टूबर, 1971)

(मुख्य न्यायाधिपति एस० एम० सीकरी, न्या० जे० एम० शैलत, जी० के० मित्तर, ए० एन० रे, आई० डी० दुआ, एस० सी० राय और डी० जी० पालेकर)

भारत का संविधान—अनुच्छेद 246 और 248—प्रविषय और विस्तार—राज्य विधानमण्डलों को अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) और (3) के अध्यधीन जो विधायी शक्ति प्राप्त है वह सीमित है और संसद् को अनुच्छेद 246 (1) के अधीन सर्वांगीण विधायी शक्ति प्राप्त है।

भारत का संविधान—सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 और 97 तथा सूची 2 की प्रविष्टि 49...अवशिष्ट शक्ति का प्रविषय और विस्तार—प्रविष्ट 97 में प्रयुक्त 'कोई अन्य विषय' का निर्वचन इस अर्थ में नहीं किया जा सकता कि इसके अन्तर्गत ऐसे विषय भी आते हैं जिनका उल्लेख सूची में नहीं किया गया है—इन शब्दों का सम्बन्ध उन्हीं विषयों से है जिनका उल्लेख प्रविष्टि 1 से 96 तक में है—प्रविष्टि 97 के निर्वचन के बारे में कोई सन्देह अनुच्छेद 248 की व्यापक शब्दावली से दूर हो जाता है—अनुच्छेद 248 के अनुसार संसद् की विधायी शक्ति केवल उन्हीं विषयों तक सीमित नहीं है जो सूची 2 और 3 के अन्तर्गत है—धनकर विषय सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है।

भारत का संविधान—विधायी शक्ति का वितरण—राज्य सूची और समवर्ती सूची के अन्तर्गत न आने वाले विषयों के सम्बन्ध संसद् की विधायी शक्ति—इसकी विधिमान्यता की कसौटी—विधायी शक्ति के वितरण के सम्बन्ध में कनाडा और ब्रिटेन की पद्धति से तुलना।

भारत का संविधान—संविधान का निर्वचन—निर्वचन करने में प्रयुक्त भाषा का संकीर्ण अर्थ नहीं करना चाहिए बल्कि संविधान के व्यापक और उदात्त प्रयोजनों को ध्यान में रख कर करना चाहिए।

धनकर अधिनियम, 1957 (1957 का 27)—धारा 2 (ग), 2 (ङ), 4, 5 और 7—वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24 द्वारा यथासंशोधित—धनकर अधिनियम की स्कीम और उद्देश्य—संशोधन की विधिमान्यता और उसका प्रभाव—राज्य को कृषि भूमि के सम्बन्ध में विधान बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है—प्रथम सूची की प्रविष्टि 86 से कृषि भूमि को अपवर्जित करने का उद्देश्य प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 की परिधि से कृषि भूमि को बाहर रखना है—

1971(10) eILR(PAT) SC 1

कृषि भूमियों आदि को सम्मिलित या अपवर्जित करने पर धनकर संविधान के अनुच्छेद 246 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता है बल्कि अनुच्छेद 248 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है—किसी व्यक्ति की आस्तियों को मूलधन मूल्य (कैपिटल वैल्यू) के कराधान और उसके शुद्ध धन के कराधान में अन्तर।

वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24 द्वारा धनकर अधिनियम, 1957 (1957 का 27) में 'शुद्ध धन' की परिभाषा को शुद्ध धन के मूलधन मूल्य पर कर की संगणना के प्रयोजन के लिए आस्तियों में कृषि भूमि को सम्मिलित करके संशोधित किया गया था। इस विधायी उपाय की विधिमान्यता को चुनौती देने वाला एक रिट पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय में फाइल किया गया था। उस न्यायालय ने एक के मुकाबले में चार के बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि वित्त अधिनियम की धारा 24, जहां तक कि उससे धनकर अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों को संशोधित किया गया है, संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है और संविधान के शक्तिबाह्य है।

इस न्यायालय में भारत संघ की ओर से मुख्य दलीलें ये दी गई थीं—

(i) आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की किसी भी प्रविष्टि के सम्बन्ध में विधि नहीं है।

(ii) आक्षेपित अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित प्रविष्टि 86 अथवा अनुच्छेद 248 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन संसद् की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत आता है।

(iii) प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्दों से सूची 1 की प्रविष्टि 97 या अनुच्छेद 248 का प्रविषय कम नहीं हो जाता।

प्रत्यर्थियों की ओर से ये दलीलें दी गई थीं—

(i) संविधान की स्कीम के अधीन राज्य को कृषि भूमि के सम्बन्ध में विधान करने की अनन्य शक्ति है इसलिए प्रविष्टि 86 से कृषि भूमि को अपवर्जित करने का उद्देश्य और प्रभाव प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 की परिधि से ऐसी सम्पत्ति को बाहर निकाल लेना है।

(ii) आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधि है।

इस अपील में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या कृषि भूमि के सम्बन्ध में छूट को प्रत्याहृत कर लेने से 'आस्तियों' की परिभाषा का संशोधन संसद् की सक्षमता के भीतर था।

अभिनिर्धारित—(मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार)—संविधान निर्माताओं ने भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाते समय कुछ विषयों या करों के बारे में या तो एकल रूप से या संयुक्त रूप से विधान बनाने की विधायी सक्षमता इस देश के विधानमण्डलों को नहीं प्रदान की। (पैरा 13)

यदि किसी केन्द्रीय अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है तो इतनी जांच करना पर्याप्त होगा कि क्या वह राज्य सूची में प्रगणित विषयों या करों के सम्बन्ध में विधि है, यदि वह नहीं है तो आगे प्रश्न नहीं

उठता । यदि केन्द्रीय अधिनियम प्रतिषिद्ध क्षेत्रों में प्रवेश या अतिक्रमण नहीं करता है तो इस प्रश्न के विनिश्चय करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि केन्द्रीय अधिनियम किसी सूची या प्रविष्टि के अन्तर्गत आएगा । (पैरा 40 और 57)

(मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार)—यदि अनुच्छेद 246 को सप्तम अनुसूची की तीनों सूचियों के साथ पढ़ा जाए तो संसद् को अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी सूची 1 में प्रगणित सभी विषयों के सम्बन्ध में विधियां बनाने की अनन्य शक्ति है । राज्य विधानमण्डलों को सूची 2 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में विधियां बनाने की अनन्य शक्ति है किन्तु यह अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) और (2) के अध्यधीन है । इसका उद्देश्य सूची 1 और 2 के विषयों पर संसदीय विधान को सर्वोपरि बनाना है । (पैरा 14)

(न्यायाधिपति शैलत के अनुसार)—इस अनुच्छेद में संसद् को जो प्रमुख रूप दिया गया है उसके बावजूद भी राज्य विधानमण्डलों को सूची 2 में उपवर्णित विषयों पर अनन्य अधिकारिता प्राप्त है और ऐसे खण्ड में, जो अन्यत्र किसी अन्य बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, अन्तर्निहित सिद्धान्त का अवलम्ब केवल परस्पर विरोध के उन मामलों में किया जा सकता है जिनको हल नहीं किया जा सकता है । (पैरा 89)

(न्यायाधिपति मित्तर के अनुसार)—अनुच्छेद 248 के खण्ड (1) में अभिव्यक्त शब्दों के अधीन केवल इस बात पर विचार किया जाना है कि क्या विधान की विषय-वस्तु सूची 2 या सूची 3 में समाविष्ट है । यदि वह इन दोनों सूचियों में समाविष्ट नहीं है तो संसद् सूची 1 के समान विषय के सम्मिलित किए जाने या इस सूची में ऐसे विषय की विनिर्दिष्ट सीमाओं के निरपेक्षता उस पर विधान करने के लिए सक्षम है । (पैरा 155)

(मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार)—सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) का कृत्य संसद् को इन प्रविष्टियों के सम्बन्ध में विधान करने की सुनिश्चित शक्ति देना है । इसका उद्देश्य संसद् को किसी ऐसे विषय पर विधान करने से वर्जित करना नहीं है चाहे संविधान के अन्य उपबन्ध ऐसा करने के लिए संसद् को समर्थ करते हों । सूची 1 की प्रविष्टि 97 में आने वाले 'कोई अन्य विषय' शब्दों का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि इससे यह अभिप्रेत है कि अपवर्जन के रूप में कोई विषय वर्णित किया गया है । वस्तुत: ये शब्द उन विषयों के प्रति निर्देश करते हैं जो प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 में से हर एक प्रविष्टि में अन्तर्विष्ट है । सूची 1 की प्रविष्टि 97 के निर्वचन में जो कुछ भी संदेह हों वे अनुच्छेद 248 के व्यापक निबन्धनों से दूर हो जाते हैं । अनुच्छेद 248 तो सूची 2 और सूची 3 में समाविष्ट विषयों के सम्बन्ध में संसद् की विधायी शक्ति को ही सीमित करता है । (पैरा 21)

(न्यायाधिपति शैलत के अनुसार)—अनुच्छेद 248 के अधीन संसद् को जो अवशिष्ट शक्ति दी गई है उसके अन्तर्गत ऐसी शक्ति नहीं आ सकती जो अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) के अधीन पहले ही प्रदत्त सूची 1 के विषयों पर संसद् को अनन्य रूप से दी गई है । अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अन्तर्विष्ट अवशिष्ट शक्ति का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उससे तीनों सूचियों में से किसी सूची में अप्रगणित विषयों के बारे में शक्ति अभिप्रेत है । अत: किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में, जिसके बारे में किसी अनुच्छेद

या तीनों सूचियों में से किसी एक सूची की किसी प्रविष्टि के अधीन पहले ही विचार किया गया है, अवशिष्ट शक्ति का साधारणतया दावा नहीं किया जा सकता। (पैरा 91)

(मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार)—हमारे संविधान जैसे सजीव लिखत के अनुच्छेद या अनुच्छेदों का निर्वचन करने के लिए एकमात्र सुरक्षित मार्ग उपयोग की गई भाषा है जिसका निर्वचन संकीर्ण रूप से नहीं बल्कि संविधान के व्यापक और उदात्त प्रयोजनों के प्रकाश में अच्छी प्रकार किया जाना चाहिए किन्तु ऐसा भाषा के प्रति अतिक्रमण किए बिना किया जाना चाहिए। (पैरा 32)

(न्यायाधिपति शैलत के अनुसार)—संविधान के शब्दों का निर्वचन उसी प्रकार ही किया जाना होता है जैसे कि न्यायालय अन्य कानूनों का करते हैं, ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिसका निर्वचन किया जाता है वह संविधान है—एक ऐसा तन्त्र है जिसके अधीन विधियां बनाई जानी होती हैं न कि ऐसा अधिनियम है जो यह घोषित करता है कि विधि क्या होगी। जहां भाषा स्पष्ट हो वहां उसे उसी प्रकार प्रभावशील किया जाना चाहिए, उसे अनावश्यक रूप से इतना नहीं खींचा जाना चाहिए जिससे कि वह अनुमानित त्रुटि या लोप को बताने में विकृत हो जाए। जहां पाठ स्पष्ट है वहां पाठ निश्चायक होता है, वह क्या निर्देशित करता है और क्या निषिद्ध करता है, यह समान होता है। यदि पाठ असंदिग्धार्थी है तो उसका हल अधिनियम के संदर्भ और स्कीम में ढूंढा जाना चाहिए। (पैरा 92)

(मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार)—डोमीनियन और प्रान्तों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम निश्चित रूप से वही है जो हमारे संविधान में है। (पैरा 41)

(न्यायाधिपति शैलत के अनुसार)—आक्षेपित विधान या मूल धनकर अधिनियम का कोई भी भाग सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता। सम्पूर्ण आक्षेपित संविधान स्पष्टतया सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है। (पैरा 74)

संविधान में ऐसी कोई बात नहीं है जो संसद् को सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन अपनी शक्तियों को सूची 1 की प्रविष्टि 96 के अधीन अपनी शक्तियों को मिलाने से रोकती हो। कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो संसद् को सूची 1 की विनिर्दिष्ट प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 के अधीन शक्तियों का अवलम्ब लेने से तथा सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन और अनुच्छेद 248 के अधीन शक्तियों को और उस प्रयोजन के लिए समवर्ती सूची की प्रविष्टियों के अधीन शक्तियों को अनुपूरित करने के लिए वर्जित करता हो। (पैरा 75)

वितरण की प्रस्तुत स्कीम से न्यायसंगत रूप से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर करों को किसी मनसूबे से सूची 1 की प्रविष्टि 97 से अपवर्जित किया गया था। (पैरा 19)

सूची 1 की प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्दों से अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 की व्यापकता को सीमित करना असम्भव है। अनुच्छेद 248 के व्यापक प्रविषय को किसी प्रविष्टि के शब्द कम नहीं कर सकते। (पैरा 20 और 24)

(न्यायाधिपति मित्तर के अनुसार)—1969 के संशोधन के पूर्व और पश्चात् धनकर अधिनियम की स्कीम से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी निर्धारिती की ऐसी सभी आस्तियों

के मूल्य पर वार्षिक कर अधिरोपित करना है जो मूल्यांकन की तारीख को उसके सभी ऋणों के, उन ऋणों से भिन्न जो अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित किए गए हैं, संकलित मूल्य से अधिक हों। (पैरा 140)

कृषि भूमियों आदि को सम्मिलित या अपवर्जित करके धनकर की विषयवस्तु संविधान के अनुच्छेद 246 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आती हैं बल्कि अनुच्छेद 248 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आती है। (पैरा 171)

(न्यायाधिपति शैलत के अनुसार)—धनकर अधिनियम के अधीन कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है।

आस्तियों के मूलधन मूल्य पर, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) के अधीन शक्ति के अधीन अधिरोपित नहीं किया जा सकता क्योंकि सूची 1 की प्रविष्टि 86 अभिव्यक्त निबन्धनों में कृषि भूमि को छोड़ कर आस्तियों के मूल्यांकन पर कर अधिरोपित करने की शक्ति को निर्बन्धित करती है। (पैरा 100)

प्रविष्टि 86 एक ऐसा उदाहरण है जिसमें निर्बन्धित विधायी शक्ति का उपबन्ध किया गया है ऐसा सम्भवतः इसलिए किया गया है क्योंकि संविधान में शक्तियों के वितरण के अधीन कृषि और कृषि भूमि का क्षेत्र लगभग पूर्णतया राज्यों को न्यस्त किया गया है। (पैरा 120)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1971]	1 एस० सी० आर० 195, 200 : **दानकर अधिकारी** बनाम **नजारथ** (Gift-tax Officer *Vs.* Nazareth);	55,61,98, 99 और 108
[1970]	2 उम० नि० प० 460,479=(1970) 1 एस० सी० आर० 479,489 : **हरकचन्द रतनचन्द बन्थिया** बनाम **भारत संघ** (Harakchand Ratanchand Banthia *Vs.* Union of India);	23
[1970]	2 उम०नि०प० 302=(1970) 1 एस०सी०आर० 388 : **श्री पृथ्वी कॉटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **बड़ोच बरो नगरपालिका** (Shri Prithvi Cotton Mills Limited *Vs.* Broach Borough Municipality);	86, 97, 136 और 174
[1970]	2 उम० नि० प० 141, 158=(1970) 1 एस० सी० आर० 268 : **नगर भूमिकर सहायक आयुक्त** बनाम **बकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड** (Assistant Commissioner of Urban land-tax *Vs.* Buckingham & Carnatic Company Limited);	60, 81, 97, 99 136, 160 और 173

1971(10) eILR(PAT) SC 1

		पैरा
[1968]	2 उम० नि० प० 794, 798=(1969) 1 एस० सी० ग्रार० 108, 110 : **सुधीर चन्द नॉन** बनाम **धनकर अधिकारी, कलकत्ता** (Sudhir Chandra Nawn *Vs*. Wealth-tax Officer, Calcutta);	59, 86, 95, 97, 99, 104, 106, 111, 112, 114, 136, 171 और 174
[1965]	56 ग्राई० टी० ग्रार० 298 : **वी० ग्रार० नारायण मूर्ति** बनाम **धनकर ग्रायुक्त** (V. R. Narayana Murthy *Vs*. Commissioner of Wealh-tax);	96
[1965]	ग्राई० टी० ग्रार० 224=2 एस० सी० ग्रार० 355 : **बनारसी दास** बनाम **धनकर अधिकारी** (Banarsi Das *Vs*. Wealth-tax Officer);	96, 168, 171 और 174
[1964]	53 ग्राई० टी० ग्रार० 504 : **राजा सर एम०ए० मुथैय्या चेट्टियार** बनाम **धनकर अधिकारी** (Raja Sir M. A. Muthiah Chettiar *Vs*. Wealth-tax Officer);	167
[1964]	52 ग्राई० टी० ग्रार० 372 : **सरजेरो अप्पासाहेब शिटोले** बनाम **धनकर अधिकारी** (Sarjero Appasaheb Shitole *Vs*. Wealth-tax Officer);	166
[1964]	2 एस० सी० ग्रार० 608, 632 : **पटेल गोर्धनदास हरगोबिन्दास** बनाम **नगरपालिक ग्रायुक्त, ग्रहमदाबाद** (Patel Gordhandas Hargobindas *Vs*. Municipal Commissioner, Ahmedabad);	159 और 174
[1963]	48 ग्राई० टी० ग्रार० 472 : **बालका का मामला** (Balaka's case);	166
[1963]	1 एस० सी० ग्रार० 491, 510 : **ग्रॉटोमोबाइल ट्रांस्पोर्ट, (राजस्थान)** बनाम **राजस्थान राज्य** [Automobile Transport (Rajasthan) *Vs*. State of Rajasthan];	52
[1963]	ए० ग्राई० ग्रार० 1963 मैसूर 111 : **श्री कृष्ण राव एल० बालेकाई** बनाम **तृतीय धनकर ग्रधिकारी** (Shi Krishna Rao L. Balekai *Vs*. Third Wealth tax Officer);	96
[1962]	सप्लीमेण्ट 2 एस० सी० ग्रार० 1 : **छोटाभाई जेठाभाई पटेल** बनाम **भारत संघ** (Chotabhai Jethabhai Patel *Vs*. Union of India);	48

पैरा

[1962] 45 आई० टी० आर० 118 :
पी० रामभद्रराजू बनाम भारत संघ (P. Ramabhadra Raju *Vs.* Union of India); 163

[1962] 44 आई० टी० आर० 277 :
सी० के० मम्मद केयी बनाम धनकर अधिकारी (C. K. Mammad Keyi *Vs.* Wealth-tax Officer); 96, 164 और 174

[1962] 44 आई० टी० आर० 94 :
जुगल किशोर बनाम धनकर अधिकारी (Jugal Kishore *Vs.* Wealth-tax Officer); 165

[1961] 1 एस० सी० आर० 809, 838 :
अतियाबाड़ी टी कम्पनी बनाम आसाम राज्य (Atiabari Tea Company *Vs.* State of Assam); 51

[1960] 40 आई० टी० आर० 567 :
एन० वी० सुब्रामणियन बनाम धनकर अधिकारी (N. V. Subramanian *Vs.* Wealth-tax Officer); 162

[1959] 37 आई० टी० आर० 191 :
महावीरप्रसाद बद्रीदास बनाम याज्ञिक, द्वितीय धनकर अधिकारी (Mahavirprasad Badridas *Vs.* Yagnik, Second Welath-tax Officer); 162

[1957] एस० सी० आर० 874, 918 :
मुम्बई राज्य बनाम चमारबुगवाला (State of Bombay *Vs.* Chamarbugwala); 50

[1954] ए० आई० आर० 1954 मुम्बई, 198 :
नगर निगम बनाम गोर्धनदास (Municipal Corporation *Vs.* Gordhandas); 159

[1951] एस० सी० आर० 51 :
मुम्बई राज्य बनाम नरोथमदास जेठाभाई (State of Bombay *Vs.* Narothamdas Jethabhai); 77

[1950] ए० सी० 122 :
कनेडियन पैसिफिक रेलवे कम्पनी बनाम अटर्नी जनरल फॉर ब्रिटिश कोलम्बिया (Canadian Pacific Railway Company *Vs.* Attorney General for British Columbia); 43 और 117

[1948] ए० सी० आर० 207 :
रल्ला राम बनाम ईस्ट पंजाब प्रान्त (Ralla Ram *Vs.* Province of East Punjab); 161

1971(10) eILR(PAT) SC 1

		पैरा
[1947]	ए० सी० 127, 150 : **अटर्नी जनरल फॉर ओन्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा** (Attorney General for Ontario *Vs.* Attorney General for Canada);	39
[1946]	एफ० सी० आर० 67, 87-88 : **मणिक्कसुन्दर भाट्टार** बनाम **नायडू** (Manikkasundara Bhattar *Vs.* Nayudu);	121
[1944]	एफ० सी० आर० 229, 261 : **गवर्नर जनरल इन काउन्सिल** बनाम **रेले इन्वैस्टमेण्ट कम्पनी** (Governor General in Council *Vs.* Releigh Investment Company);	22
[1942]	एफ० सी० आर० 90, 105 : **मद्रास प्रान्त** बनाम **मैसर्स बोद्दू पायदान्ना** (Province of Madras *Vs.* M/s. Boddu Paidanna);	49 और 221
[1940]	ए० आई० आर० 1940 मुम्बई 65 : **सर बयरामजी जीजीभाई** बनाम **मुम्बई प्रान्त** (Sir Byramjee Jeejeebhai *Vs.* Province of Bombay);	158
[1940]	एफ० सी० आर० 188, 203 : **सुब्रामणियन चेट्टियार** बनाम **मुत्तुस्वामी गौण्डन** (Subrahmanyan Chettiar *Vs.* Muthuswami Goundan);	53, 76, 107 और 120
[1939]	एफ० सी० आर० 18, 38 : **सी० पी० एण्ड बारार ऐक्ट,** 1938 (1938 **का** 14) **का मामला** (In re. C. P. & Berar Act, 1938 (XIV of 1938);	89, 91 और 92
[1939]	ए० सी० 117, 130 : **अटर्नी जनरल फॉर एलबर्टा** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा** (Attorney General for Alberta *Vs.* Attorney General for Canada);	73
[1938]	ए० सी० 708, 719-720 : **शनोन** बनाम **लोअर मेन्लैण्ड डेरि प्रोडक्ट्स बोर्ड** (Shannon *Vs.* Lower Mainland Dairy Products Board);	54
[1937]	ए० सी० 863, 869 : **कालाघर** बनाम **लिन्न** (Callagher *Vs.* Lynn);	54
[1937]	ए० सी० 355, 367 : **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर ओन्टेरियो** (Attorney General for Canada *Vs.* Attorney General for Ontario);	72

[1933]	ए० सी० 710 : प्रोविन्शियल ट्रेजरर ऑफ एलबर्टा और एक अन्य बनाम सी० ई० केर और एक अन्य (Provincial Treasurer of Alberta and Another *Vs.* C.E. Kerr and Another);	153
[1932]	ए० सी० 514 : सिल्वर ब्रदर्स लिमिटेड का मामला (In re. Silver Brothers Limited);	45 और 117
[1932]	ए० सी० 54, 57 : रेगूलेशन एण्ड कन्ट्रोल ऑफ एयरोनाटिक्स इन कनाडा का मामला (In re. Regulation and Control of Aeronautics in Canada) ;	45, 79 और 117
[1932]	ए० सी० 41 : इन्श्योरेन्स ऐक्ट ऑफ कनाडा का मामला (In re. Insurance Act of Canada) ;	73
[1931]	ए० सी० 310 : प्रोपराइटरी आर्टीकल्स ट्रेड एसोसियेशन बनाम अटर्नी जनरल फार कनाडा (Proprietary Articles Trade Association *Vs.* Attorney General for Canada) ;	116
[1930]	ए० सी० 111, 118 : अटर्नी जनरल फॉर कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फॉर ब्रिटिश कोलम्बिया (Attorney General for Canada *Vs.* Attorney General for British Columbia);	44 और 117
[1924]	ए० सी० 328, 342 : अटर्नी जनरल फोर ओण्टेरियो बनाम रैसीप्रोकल इन्श्योरेन्स (Attorney General for Ontario *Vs.* Reciprocal Insurance) ;	73
[1921]	2 ए० सी० 417 : कनेडियन पैसीफिक वाइन कम्पनी लिमिटेड बनाम तुलेव (Canadian Pacific Wine Co. Ltd. *Vs.* Tulev) ;	116
[1921]	2 ए० सी० 91, 116 : ग्रेट वैस्ट सैडुलरी कम्पनी बनाम किंग (Great West Saddlery Company *Vs.* King) ;	53
[1916]	ए० सी० 588, 595 : अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन ऑफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि प्राविन्स ऑफ एलबर्टा (Attorney General for the Dominion of Canada *Vs.* Attorney General for the Province of Alberta) ;	111

[1912] ए० सी० 571, 581 :
अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर कनाडा (Attorney General for Ontario *Vs.* Attorney General for Canada) ; 39 और 92

[1908] 6 सी० एल० आर० 469 :
अटर्नी जनरल फॉर न्यू साउथ वेल्स बनाम ब्रयूरि एम्पलाइज़ यूनियन (Attorney General for New South Wales *Vs.* Brewery Employees Union) ; 92

[1907] ए० सी० 65 :
ग्रैण्ड ट्रंक रेलवे ऑफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा (Grand Trunk Railway of Canada *Vs.* Attorney General of Canada) ; 44

[1896] ए० सी० 348 :
अटर्नी जनरल फॉर ओन्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन (Attorney General for Ontario *Vs.* Attorney General for the Dominion) ; 44, 46 और 116

[1894] ए० सी० 189 :
अटर्नी जनरल ऑफ ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन (Attorney General of Ontario *Vs.* Attorney General for the Dominion) ; 44

[1894] ए० सी० 31 :
टेनेण्ट बनाम यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया (Tenant *Vs.* Union Bank of India) ; 44

[1881-82] 7 अपील केसिस 829, 836 :
रसल बनाम क्वीन (Russel *Vs.* Queen) ; 42, 47, 114 और 117

[1881-82] 7 अपील केसिस 96 :
सिटीजन्स इन्श्योरेन्स कम्पनी बनाम पारसन्स (Citizens Insurance Company *Vs.* Parsons) ; 42,54 और 117

[1879] 5 अपील केसिस 155 :
वेलिन बनाम लैंगलोट्स (Valin *Vs.* Langlots) ; 118

[1816] ए० सी० 348 :
अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन (Attorney General for Ontario *Vs.* Attorney General for the Dominion) ; 44

6 सी० डा० आर० 41, 42 :
किंग बनाम बार्टर (King *Vs.* Bartar) ; 111

सिविल अपीली अधिकारिता : 1970 की सिविल अपील संख्या 2172.

1970 के रिट पिटीशन संख्या 2673 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 28 सितम्बर, 1970 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

मध्यक्षेपी (इन्टरवीनर्स)

1. पंजाब राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल)
2. महाराष्ट्र राज्य के महाधिवक्ता
3. गुजरात राज्य
4. केरल राज्य
5. पश्चिमी बंगाल राज्य
6. बिहार राज्य
7. उड़ीसा राज्य
8. एम० थंगावेलू
9. के० के० कुरियन
10. पी० जी० गुर्जर
11. कर्नल हिज़ हाईनेस राजा हरिन्दर सिंह बरार बन्स बहादुर
12. जी० डी० सोवनी
13. के० मरूथाचलम्
14. चौधरी मोहम्मद शरीफ खां
15. राव फरहात सैयद खां
16. राव राहत सैयद खां
17. श्री सिद्धरामस्वामी गुरू चिन्हावरा स्वामी
18. राय बहादुर एम० एस० ओबेराय

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री एम० एस० सीतलवाड, एम० सी० छागला, आर० एच० ढेबर और बी० डी० शर्मा
प्रत्यर्थी की ओर से	पंजाब और हरियाणा राज्य के महाधिवक्ता श्री एच० एल० सिब्बल और श्री एन० ए० पालखीवाला, कुमारी भुवनेश कुमारी और सर्वश्री जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर, रवीन्द्र नारायण, सतीश सिब्बल और के० पी० भण्डारी
मध्यक्षेपी सं० 1 की ओर से	पंजाब और हरियाणा राज्य के महाधिवक्ता श्री एच० एल० सिब्बल और सर्वश्री पी० सी० भरतरी, जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर और रवीन्द्र नारायण
मध्यक्षेपी सं० 2 की ओर से	सर्वश्री सी० के० दफ्तरी और एस० बी० वाड
मध्यक्षेपी सं० 3 की ओर से	सर्वश्री एस० के० ढोलकिया और बी० डी० शर्मा

1971(10) eILR(PAT) SC 1

मध्यक्षेपी सं० 4 की ओर से	केरल राज्य के महाधिवक्ता श्री एम० एम० अब्दुल खादर और श्री एम० आर० कृष्ण पिल्लई
मध्यक्षेपी सं० 5 की ओर से	सर्वश्री बी० सेन, एस० पी० मित्रा और जी० एस० चटर्जी
मध्यक्षेपी सं० 6 की ओर से	बिहार राज्य के महाधिवक्ता श्री लाल नारायण सिन्हा और श्री यू० पी० सेन
मध्यक्षेपी सं० 7 की ओर से	उड़ीसा राज्य के महाधिवक्ता श्री आर० सी० मिश्र और सर्वश्री सन्तोष चटर्जी और जी० एस० चटर्जी
मध्यक्षेपी सं० 8 की ओर से	सर्वश्री जी० बी० पाई, पी० के० कुरियन, कुमारी भुवनेश कुमारी, सर्वश्री जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर रवीन्द्र नारायण और ए० मनीसिस
मध्यक्षेपी सं० 9 और 10 की ओर से	सर्वश्री जे० बी० पाई, पी० के० कुरियन, कुमारी भुवनेश कुमारी, सर्वश्री जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर और रवीन्द्र नारायण
मध्यक्षेपी सं० 11 की ओर से	सर्वश्री के० सी० पुरी, के० एल० मेहता, एस० के० मेहता और के० आर० नागराज
मध्यक्षेपी सं० 12 की ओर से	सर्वश्री आर० एन० बनर्जी, ओ० पी० खैतान, जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर और रवीन्द्र नारायण
मध्यक्षेपी सं० 13 की ओर से	सर्वश्री एम० के० राममूर्ति, सी० आर० सोमेशकरण, मदन मोहन, विनीत कुमार, श्रीमती बिन्द्रा राणा, सर्वश्री एस० गणेश और रोमेश सी० पाठक
मध्यक्षेपी सं० 14 से 16 की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग, एस० सी० अग्रवाल, नारायण नेतर, आर० के० जैन और वी० जे० फ्रांसिस
मध्यक्षेपी सं० 17 की ओर से	सर्वश्री के० आर० चौधरी और के० राजेन्द्र चौधरी
मध्यक्षेपी सं० 18 की ओर से	सर्वश्री जे० बी० दादाचांजी, ओ० सी० माथुर, रवीन्द्र नारायण और पी० सी० भरतरी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति एस० एम० सीकरी ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति सीकरी—

यह अपील 1970 के सिविल रिट संख्या 2291 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध की गई है। पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उस रिट की सुनवाई की थी। चार न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24, जहां तक कि उससे धनकर अधिनियम, 1957 के सुसंगत उपबन्ध संशोधित

हुए हैं, संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है किन्तु न्यायाधिपति पण्डित ने यह अभिनिर्धारित किया कि आक्षेपित अधिनियम संसद् की विधायी शक्ति के अन्तर्गत था। तदनुसार उच्च न्यायालय ने इस बात का निदेश दिया कि वित्त अधिनियम द्वारा यथा-संशोधित धनकर अधिनियम जहां तक कि शुद्ध धन की संगणना करने के प्रयोजन के लिए कृषि भूमि का मूलधन मूल्य (कैपिटल वैल्यू) उसके अन्तर्गत आता है वहां तक भारत के संविधान के अधिकारातीत (अल्ट्रावायरस) है।

2. हम यह बता देना चाहते हैं कि बहुमत से यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि आक्षेपित अधिनियम संविधान की सप्तम अनुसूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधि नहीं है। दूसरे शब्दों में बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह कर सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत नहीं आता है।

3. वित्त अधिनियम 1969 द्वारा धनकर अधिनियम, 1957 का संशोधन इसलिए किया गया था कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य को शामिल शुद्ध धन की संगणना के प्रयोजन के लिए किया जाए। 'आस्तियों' की परिभाषा धारा 2(ग) में की गई है। 'आस्तियों' के अन्तर्गत हर प्रकार की जंगम या स्थावर सम्पत्ति आती है। जिन बातों को छोड़ दिया गया है उन्हें वर्णित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे पूर्वतर निर्धारण वर्षों से सम्बन्धित हैं। 'शुद्ध धन' की परिभाषा धारा 2(ड) में की गई है। 'शुद्ध धन' से वह रकम अभिप्रेत है "जिससे इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार संगणित ऐसी सब आस्तियों का चाहे वे कहीं भी स्थित हों, जो मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती की हों, जिनके अन्तर्गत इस अधिनियम के अधीन उस तारीख को उसके शुद्ध धन में सम्मिलित किए जाने के लिए अपेक्षित आस्तियां आती हैं, संकलित मूल्य मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती के सभी ऋणों के संकलित मूल्य से अधिक है" जो परिभाषा में उपवर्णित कतिपय ऋणों से भिन्न है। किसी ऐसे वर्ष के सम्बन्ध में, जिसके लिए कोई निर्धारण इस अधिनियम के अधीन किया जाना है, 'मूल्यांकन की तारीख' की परिभाषा धारा 2(थ) में की गई है। 'मूल्यांकन की तारीख' से आयकर अधिनियम की धारा 3 में यथापरिभाषित पूर्व वर्ष का अन्तिम दिन अभिप्रेत है, यदि उस वर्ष के लिए निर्धारण इस अधिनियम के अध्यधीन किया जाना हो। हमें यहां पर परन्तुक के उपवर्णित करने की आवश्यकता नहीं है। धारा 3 प्रभारी धारा है और वह इस प्रकार है—

> * "3. इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, 1957 के अप्रैल के प्रथम दिन को और उससे प्रारम्भ होने वाले हर निर्धारण वर्ष के लिए हर व्यष्टि, हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब और कम्पनी के तत्सम्बन्धी मूल्यांकन की तारीख को शुद्ध धन पर कर (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'धन-कर' के रूप में

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3. Subject to the other provisions contained in this Act, there shall be charged for every assessment year commencing on and from the first day of April, 1957, a tax (hereinafter referred to as the "wealth-tax" in respect of the net wealth on the corresponding

1971(10) eILR(PAT) SC 1

निर्दिष्ट किया गया है) अनुसूची में विनिर्दिष्ट दर या दरों पर प्रभारित किया जाएगा।"

4. धारा 4 के अन्तर्गत कतिपय ऐसी आस्तियां आती हैं जो निर्धारिती की हों।

5. धारा 5 में कतिपय आस्तियों के सम्बन्ध में कुछ छूटें प्रदान की गई हैं। हमें केवल धारा 5(ivक) ही उद्धृत करने की आवश्यकता है—

*"धारा 5(ivक). निर्धारिती की कृषि भूमि, जिसका मूल्य, 1,50,000 रुपये से अधिक न हो :

परन्तु जहां निर्धारिती के स्वामित्व में कोई ऐसा गृह या गृह का भाग है, जो दस हजार से अधिक जनसंख्या वाले स्थान में स्थित है और जिसे खण्ड (iv) के उपबन्ध लागू होते हैं और ऐसे गृह या गृह के भाग का मूल्य उस कृषि भूमि के मूल्य सहित 1,50,000 रुपये से अधिक हो जाता है वहां वह रकम, जो इस खण्ड के अधीन निर्धारिती के शुद्ध धन में सम्मिलित नहीं की जाएगी, ऐसे गृह या उस गृह के भाग के मूल्य की उतनी रकम, जितनी खण्ड (iv) के अधीन निर्धारिती के शुद्ध धन में सम्मिलित न की जानी हो, घटा कर 1,50,000 रुपये होगी।"

धारा 5(ivख), 5(viiiक) और 5(ix) इस प्रकार हैं—

**"5(ivख). कृषि भूमि रखने वाले कृषक या कृषि भूमि से लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता के स्वामित्व में का कोई एक भवन या भवनों का एक समूह;

परन्तु ऐसा भवन या भवनों का समूह उसी भूमि पर है या उसके ठीक निकट स्थित है और उसकी आवश्यकता खेतिहर या लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता को

---

valuation date of every individual, Hindu Undivided Family and company at the rate or rates specified in the Schedule."

*"5(iva). Agricultural land belonging to the assessee subject to a maximum of one hundred and fifty thousand rupees in value :

Provided that where the assessee owns any house or part of house situate in a place with a population exceeding ten thousand and to which the provisions of clause (iv) apply and the value of such house or part of house together with the value of the agricultural land exceeds one hundred and fifty thousand rupees, than the amount that shall not be included in the net wealth of the assessee under this clause shall be one hundred and fifty thousand rupees as reduced by so much of the value of such house or part of house as is not to be included in the net wealth of the assessee under clause (iv).

** "5(ivb). One building or one group of buildings owned by a cultivator of, or receiver of rent or revenue out of agricultural land :

Provided that such building or group of buildings is on or in the immediate vicinity of the land and is required by the cultivator or

1971(10) eILR(PAT) SC 1

उस भूमि से अपने सम्बन्ध के कारण निवास गृह, भण्डार गृह या बाह्य गृह के रूप में है।"

"5(viii-क). कृषि भूमि पर उगती हुई फसलें (जिनके अन्तर्गत वृक्षों पर फल भी हैं) और ऐसी भूमि पर घास;"

"5(ix). वे औजार, उपकरण और उपस्कर जो निर्धारिती द्वारा कृषि भूमि की खेती, संरक्षण, सुधार या अनुरक्षण के लिए या ऐसी भूमि पर कोई कृषि या उद्यान कृषि उपज पैदा करने या काटने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए औजारों, उपकरणों और उपस्कर के अन्तर्गत ऐसा कोई संयंत्र या मशीनरी नहीं आती है जिसे किसी कृषि उपज के प्रसंस्करण या ऐसी उपज से किसी वस्तु के विनिर्माण के सम्बन्ध में चाय या अन्य बागान में काम में लाया जाता है;"

6. धारा 7 (1) आस्तियों के मूल्यांकन के सम्बन्ध में है और उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि "इस निमित्त बनाए गए किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए नकदी से भिन्न किसी आस्ति का प्राक्कलित मूल्य उतना माना जाएगा जितना कि धनकर अधिकारी की राय में उसकी कीमत मूल्यांकन की तारीख पर खुले बाजार में बेचने से प्राप्त हो'।

7. शेष उपबन्ध उस तंत्र (मशीनरी) से सम्बन्धित उपबन्ध हैं जिनमें प्राधिकारियों और निर्धारण की, और अपीलों, पुनरीक्षणों, निर्देशों, धनकर का संदाय और वसूली, प्रतिसंदाय जैसे विशेष मामलों से सम्बन्धित विशेष उपबन्धों और प्रकीर्ण उपबन्धों की चर्चा है।

8. संघ की ओर से उपसंजात होने वाले श्री सीतलवाड ने संक्षेप में यह निवेदन किया कि आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की किसी भी प्रविष्टि (जिसके अन्तर्गत प्रविष्टि 49 भी है) के सम्बन्ध में विधि नहीं है—यदि यह ऐसा है तो इसे आवश्यक रूप से प्रविष्टि 97 के साथ पठित प्रविष्टि 86 के अधीन अथवा संविधान के अनुच्छेद 248 के साथ

---

the receiver of rent or revenue, by reason of his connection with the land, as dwelling-house, store-house or outhouse ;"

"5 (viiia). Growing crops (including fruits on trees) on agricultural land and grass on such land; "

"5(ix) The tools, implements and equipment used by the assessee for "the cultivation, conservation, improvement or maintenance of agricultural land, or for the raising or harvesting of any agricultural or horticultural produce on such land.

Explanation.—For the purposes of this clause, tools, implements and equipment do not include any plant or machinery used in any tea or other plantation in connection with the processing of any agricultural produce or in the manufacture of any article from such produce; "

पठित स्वयं प्रविष्टि 97 के अधीन संसद् की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत आना चाहिए— प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्द न तो अनुसूची 1 की प्रविष्टि 97 और न ही संविधान के अनुच्छेद 248 के प्रविषय को कम कर सकते हैं।

9. इस अपील में प्रत्यर्थी की ओर से उपसंजात होने वाले श्री पालखीवाला तथा मध्यक्षेपियों की ओर से अन्य काउन्सेलों ने संक्षेप में यह निवेदन किया कि संविधान की स्कीम यह है कि राज्यों को कृषि-भूमि, कृषि-भूमि पर आय और उस पर करों के सम्बन्ध में विधान करने की अनन्य शक्तियां दीं जाएं—इस संदर्भ में प्रविष्टि 86 के प्रविषय से कृषि भूमि को विनिर्दिष्टतया अपवर्जित करने का उद्देश्य और प्रभाव उसे सूची 1 की प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 की परिधि से भी बाहर निकालना था—उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधि नहीं है।

10. श्री सीतलवाड ने यह भी तर्क दिया कि हमारे संविधान के अधीन संसदीय कानून की विधिमान्यता की परख करने के लिए उचित रास्ता यह है कि पहले यह देखना चाहिए कि क्या संसदीय विधान सूची 2 में वर्णित किसी विषय या कर के सम्बन्ध में है; यदि वह ऐसा नहीं है तो कोई अन्य प्रश्न नहीं उठेगा। प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि जांच करने की इस रीति के बारे में इस न्यायालय ने पिछले बीस वर्षों के अपने अस्तित्व के दौरान किसी भी विनिश्चय में संकेत नहीं किया है और तदनुसार इस कसौटी में कुछ न कुछ गलत बात अवश्य है। विद्वान् काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि यह कसौटी कनाडा के संविधान से ली गई है और कनाडा का संविधान बिल्कुल भिन्न है और उन विनिश्चयों का यहां अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए और न ही उन्हें हमारे संविधान को लागू किया जाना चाहिए।

11. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षेपित अधिनियम की विधिमान्यता के प्रश्न पर तथा पक्षकारों की दलीलों पर विचार करने का सर्वोत्तम रास्ता यह है कि हम अपने से ही दो प्रश्न करें—पहला, क्या आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधान है? और दूसरा, यदि वह ऐसा नहीं है तो क्या वह संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है?

12. हमने इन प्रश्नों को इस तरतीब और इस रूप में इसलिए रखा है क्योंकि हमारी यह सुनिश्चित राय है, जैसे कि हमने आगे बताया है, कि हमारे संविधान की स्कीम और सुसंगत अनुच्छेदों अर्थात् अनुच्छेद 247, अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 के वास्तविक निबन्धनों से यह दर्शित होता है कि कोई ऐसा विषय, जिसके अन्तर्गत कर भी है, जो सूची 2 के अधीन अनन्य रूप से राज्य विधानमण्डल को या सूची 3 के अधीन समवर्ती रूप से संसद् को आबंटित नहीं किया गया है, सूची 1 के अन्तर्गत आता है जिसमें अनुच्छेद 248 के साथ पठित उस सूची की प्रविष्टि 97 भी शामिल है।

13. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा नहीं सोचा जा सकता कि संविधान के निर्माताओं ने भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाते समय कुछ विषयों या करों के बारे में या तो एकल रूप से या संयुक्त रूप से विधान बनाने की विधायी सक्षमता इस देश के विधानमण्डलों को नहीं प्रदान की। किन्तु इसके विपरीत बात यह

है कि सुसंगत अनुच्छेदों की भाषा बहुत स्पष्ट है जिससे यह प्रकट होता है कि संविधान सभा का यह आशय नहीं था। संविधान के भाग 11 का अध्याय 1, 'विधायी शक्ति के वितरण' के सम्बन्ध में है। इस अध्याय का अनुच्छेद 246 इस प्रकार है—

> "246. (1) खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी संसद् को सप्तम अनुसूची की सूची 1 में (जो इस संविधान में 'संघ सूची' के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।
>
> (2) खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी संसद् को तथा खण्ड (1) के अधीन रहते हुए किसी राज्य के विधानमण्डल को भी सप्तम अनुसूची की सूची 3 में (जो इस संविधान में 'समवर्ती सूची' के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की शक्ति है।
>
> (3) खण्ड (1) और (2) के अधीन रहते हुए किसी राज्य के विधानमण्डल को सप्तम अनुसूची की सूची 2 में (जो इस संविधान में 'राज्य सूची' के नाम से निर्दिष्ट है) प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में ऐसे राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।
>
> (4) संसद् को भारत राज्यक्षेत्र के किसी भाग के लिए, जो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के बारे में विधि बनाने की शक्ति है चाहे फिर वह विषय 'राज्य सूची' में प्रगणित विषय क्यों न हो।"

14. अनुच्छेद 246 को सप्तम अनुसूची की तीनों सूचियों के साथ पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संसद् को सूची 1 में प्रगणित सभी विषयों के सम्बन्ध में और अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) और (3) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। राज्य विधानमण्डलों को सूची 2 में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधियां बनाने की अनन्य शक्तियां प्राप्त हैं किन्तु यह अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) और (2) के अध्यधीन है। इस अध्यधीन रहने का उद्देश्य सूची 1 और 2 के विषयों पर संसदीय विधान को सर्वोच्च बनाना है। अनुच्छेद 246 के खण्ड (4) के अधीन संसद् भारत के राज्यक्षेत्र के किसी ऐसे भाग के लिए, जोकि किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, राज्य सूची में प्रगणित किसी विषय पर विधान करने के लिए भी सक्षम है। अनुच्छेद 248 में अवशिष्ट विधान शक्तियां संघीय संसद् को प्रदान की गई हैं। इस अनुच्छेद में यह उपबन्धित है—

> "248 (1) संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में, जो 'समवर्ती सूची' अथवा 'राज्य सूची' में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।
>
> (2) ऐसी शक्ति के अन्तर्गत ऐसे करों के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं है, आरोपण करने के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति भी है।"

यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तो संसद् राज्य सूची में के किसी विषय के बारे में अनुच्छेद 250 के अधीन विधान बना सकता है। अनुच्छेद 253 के अधीन संसद् को किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि, करार या कन्वेन्शन के परिपालन के प्रयोजन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति है।

15. विधायी शक्तियों के वितरण की यह स्कीम गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 से ली गई है, किन्तु एक पहलू पर इसमें बहुत अधिक अन्तर है और हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह अन्तर, जहां तक प्रस्तुत संविवाद का सम्बन्ध है, इस स्कीम को बिल्कुल भिन्न बना देता है। गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के अधीन अवशिष्ट शक्तियां न तो केन्द्रीय विधानमण्डल को और न प्रान्तीय विधानमण्डल को दी गई थीं। इसका कारण इण्डियन कांस्टिट्यूशनल रिफार्म पर संयुक्त कमेटी की रिपोर्ट के खण्ड 1, पैरा 56 में दिया गया था। इसका कारण यह था कि अवशिष्ट विधायी शक्तियों के आबंटन के सम्बन्ध में भारत में उस समय बहुत मत वैभिन्न्य था। परिणामतः गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 104 अधिनियमित की गई थी जिसमें यह उपबन्धित है—

*"104. अवशिष्ट विधान शक्तियां—(1) उपराज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा या तो फैडरल विधानमण्डल को या प्रान्तीय विधानमण्डल को इस ऐक्ट की सप्तम अनुसुची की सूचियों में से किसी में अप्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में विधि अधिनियमित करने के लिए सशक्त कर सकता है जिसमें किसी ऐसी सूची में अवर्णित करके अधिरोपण के लिए विधि भी शामिल है तथा यथास्थिति फैडरल या प्रान्त का कार्यपालिक प्राधिकार का विस्तार इस प्रकार निर्मित किसी विधि के प्रशासन तक होगा जब तक कि उपराज्यपाल अन्यथा निर्दिष्ट न करे।

(2) इस धारा के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने में उपराज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य करेगा।"

16. इस रिपोर्ट के पैरा 50 से यह प्रकट होता है कि 'ह्वाईट पेपर द्वारा अपनाई गई पद्धति (इस सम्बन्ध में डोमिनियन फैडरल कांस्टिट्यूशनों की मुख्य बातों का अनुसरण करते हुए) क्रमशः केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच विधायी शक्ति का वितरण करना है और इस वितरण के निर्देश द्वारा सरकार के केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यक्षेत्रों की परिभाषा करना है' और क्योंकि अवशिष्ट शक्तियों के आबंटन के सम्बन्ध में बड़े-बड़े भारतीय समुदायों के बीच दुराराध्य मतभेदों के स्पष्ट रूप से विद्यमान् होने के कारण संयुक्त कमेटी ने ह्वाईट पेपर प्रस्थापना को बदलने के लिए सिफारिश नहीं की।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"**104. Residual powers of legislation.** (1) The Governor-General may by public notification empower either the Federal Legislature or a Provincial Legislature to enact a law with respect to any matter not enumerated in any of the lists in the Seventh Schedule to this Act, including a law imposing a tax not mentioned in any such list and the executive authotiry of the Federation or of the Province, as the case may be, shall extend to the administration of any law so made, unless the Governor-General otherwise directs.

(2) In the discharge of his functions under this sction the Governor-General shall act in his discretion."

17. इस बारे में कोई विवाद प्रतीत नहीं होता है कि संविधान निर्माता अवशिष्ट विधान शक्तियां संघ संसद् को देना चाहते थे। निस्सन्देह यह बात अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 से स्पष्ट है। किन्तु अवशिष्ट शक्तियों के विस्तार के सम्बन्ध में बहुत गम्भीर विवाद है। प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्द प्रतिषेधात्मक शब्द हैं, जो संसद् को आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर उद्ग्रहण करने वाली किसी विधि में कृषि भूमि के मूलधन मूल्य को शामिल करने से प्रतिषिद्ध करते हैं। सूची 1 की प्रविष्टि 97 के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि यदि कोई विषय सूची 1 की किसी प्रविष्टि से विनिर्दिष्टतया अपवर्जित किया गया है तो यह स्पष्ट है कि उसे सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन शामिल करने का कोई आशय नहीं था; प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्द स्वयं में एक ऐसा विषय गठित करते हैं और इसलिए वे सूची 1 की प्रविष्टि 97 में 'कोई अन्य विषय' शब्दों के अन्तर्गत नहीं आते। हमारा ध्यान सूची 1 की अनेक प्रविष्टियों की ओर आकर्षित किया गया था जिनमें सूची 1 से कुछ मदों को अपवर्जित किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रविष्टि 82 में कृषि आय पर करों को 'आय पर करों' की परिधि से अपवर्जित किया गया है; प्रविष्टि 84 में, मानव उपभोग के मद्यसारिक पानों और अफीम, भांग और अन्य पिनक लाने वाली औषधियों तथा स्वापकों पर उत्पाद शुल्क का अपवर्जन किया गया है; प्रविष्टि 86 में आस्तियों के मूलधन मूल्य पर करों के क्षेत्र में से कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है; प्रविष्टि 87 में सम्पत्ति के बारे में संघ सम्पत्ति शुल्क से कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है; और प्रविष्टि 88 में सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्कों के भार से कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है। यह दलील दी गई है कि इन अपवर्जनों का उद्देश्य यह था कि संसद् को इन अपवर्जित विषयों के बारे में विधान बनाने की सक्षमता से पूर्णतया वंचित कर दिया जाए।

18. यह ध्यान देने की बात है कि ऐसे सभी विषय और कर, जो अपवर्जित किए गए हैं, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर करों के सिवाय सूची 2 की प्रविष्टियों में से किसी न किसी प्रविष्टि के अन्तर्गत विनिर्दिष्टतया आते हैं जबकि कृषि आय पर कर सूची 1 की प्रविष्टि 82 से अपवर्जित किए गए हैं, वे सूची 2 की प्रविष्टि 46 के रूप में दिए गए हैं। सूची 1 की प्रविष्टि 84 में अपवर्जित उत्पाद शुल्क सूची 2 की प्रविष्टि 51 में शामिल किए गए हैं; प्रविष्टि 87 में छूट प्राप्त कृषि भूमि को सूची 2 की प्रविष्टि 48 के रूप में सम्मिलित किया गया है; और इसी प्रकार सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्कों के भार से छूट प्राप्त कृषि भूमि को सूची 2 की प्रविष्टि 47 में उत्तराधिकार के बारे में शुल्कों की विषय-वस्तु बनाया गया है।

19. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वितरण की इस स्कीम से विधिसंगत रूप में यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर करों को सूची 1 की प्रविष्टि 97 से युक्तियुक्ततः अपवर्जित किया गया था। इस सम्बन्ध में यह बात याद रखना अच्छा होगा कि तीनों सूचियों का प्रथम प्रारूप तारीख 5 जुलाई, 1947 वाली यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट के साथ संलग्न किया गया था (देखिए खण्ड 5, कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, पृष्ठ 60)। उस समय सूची 1 में 87 प्रविष्टियां शामिल थीं और उसमें कोई

1971(10) eILR(PAT) SC 1

अवशिष्ट प्रविष्टि नहीं थी। 20 अगस्त, 1947 को श्री एन० गोपालस्वामी आय्यंगर ने इस रिपोर्ट पर विचार किए जाने का प्रस्ताव रखा। उस प्रक्रम पर यह स्पष्ट था कि देशी राज्यों की दशा में अवशिष्ट विषय देशी राज्यों के पास ही तब तक रहने थे जब तक कि वे उन्हें केन्द्र को समर्पित करने के लिए इच्छुक न हों। श्री गोपालस्वामी ने यह कहा—

"महोदय, अब जब कि यह कमेटी प्रथम रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् एकत्र हुई है, हम उन बन्धनों से मुक्त हो गए हैं जो हमने कैबिनेट मिशन प्लान को स्वीकार करने के कारण अपने ऊपर अधिरोपित किए थे और कमेटी ने यह निष्कर्ष निकला है कि हम इस देश में केन्द्र को यथासम्भव मजबूत बनाएं और प्रान्तीय विषयों के व्यापक क्षेत्र को छोड़ दें जिसमें कि प्रान्तों को उनके बारे में अपनी इच्छानुसार व्यवस्था करने की अत्यधिक स्वतन्त्रता हो। इस दृष्टिकोण के अनुसार यह विनिश्चय किया गया था कि हम तीन सर्वांगीण सूचियां तैयार करें। उनमें से एक फैडरल विषयों के सम्बन्ध में और दूसरी प्रान्तीय विषयों के सम्बन्ध में और तीसरी समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में हो और यदि कोई अवशिष्ट विषय रह भी जाएं, यदि भविष्य में कोई ऐसा विषय उत्पन्न हो जाए जिसे इन तीनों सूचियों में से किसी में भी शामिल न किया जा सके, तब जहां तक कि प्रान्तों का सम्बन्ध है उस विषय के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह केन्द्र के पास है।

किन्तु यह ऐसा विनिश्चय नहीं है जिसे कमेटी ने राज्यों को लागू किया है। आप रिपोर्ट में इसके सम्बन्ध में उल्लेख पाएंगे। रिपोर्ट में जो कुछ भी कहा गया है वह यह है कि ये अवशिष्ट विषय राज्यों के पास तब तक रहेंगे जब तक कि राज्य केन्द्र को समर्पण करने के लिऐ इच्छुक न हों। मुझे यह मालूम नहीं है कि क्या वे लोग जो इस सभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं इस प्रकार का कोई विनिश्चय करेंगे, जिसके बारे में कमेटी ने सम्भवतः उस समय आशा की थी जब कि कमेटी ने ऐसा कहा था। किन्तु जैसी स्थिति है उसी तरह हमें काम करना पड़ेगा।

ऐसा एक और विषय है जिसके बारे में यह महत्त्वपूर्ण है कि हम उस पर ध्यान दें। प्रान्तों के मामले में अवशिष्ट विषय ऐसे विषय हैं जो इन तीनों लम्बी सूचियों में से, जिन्हें हमने इस रिपोर्ट के साथ संलग्न किया है, किसी में भी शामिल नहीं किए गए हैं। राज्य के मामले में अवशिष्ट विषयों से वस्तुतः यह अभिप्रेत होगा कि वे ऐसे सभी विषय हैं जो फैडरल सूची मे शामिल नहीं किए गए हैं। मैं इस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे मित्र माननीय श्री अम्बेदकर इस बात का ध्यान देना चाहेंगे कि राज्य भी समवर्ती सूची को पूर्णतया नहीं तो उसमें की कुछ मदों पर अपनी सहमति प्रकट करेंगे। कुछ लोगों की विचारधारा इसके पक्ष में है। किन्तु इस समय जो स्थिति है उसमें यह रिपोर्ट ज्यों की त्यों है। प्रान्तीय सूची में शामिल सभी विषय, समवर्ती सूची में शामिल सभी विषय और जो भी विषय फैडरल सूची में शामिल नहीं किए गए हैं वे राज्यों के पास हैं।"

यदि अवशिष्ट विषय अन्ततोगत्वा राज्यों को समनुदिष्ट किए गए हैं तो क्या इस तर्क पर जोर दिया जा सकता है कि राज्यों की तुलना में 'कृषि भूमि के मूलधन मूल्य' पर करों

का विषय राज्यों की शक्तियों के बाहर होता ? स्पष्ट है कि ऐसा नहीं होता। यदि ऐसी बात है तो संसद् को अन्ततोगत्वा प्रदत्त अवशिष्ट शक्तियों में से इसे अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं हो सकता। संसद् को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान किए जाने से अवशिष्ट शक्तियों का रूप नहीं बदलता।

20. सम्भवत: ऐसा सोचा गया हो कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर कर को सूची 2 की प्रविष्टि 49 में शामिल कर लिया गया है। इस दलील की जांच आगे की जाएगी। किन्तु यदि सूची 2 की प्रविष्टि 49 का उचित रूप से निर्वचन करने और उसे सूची 1 की प्रविष्टि 86 के प्रकाश में पढ़ने पर यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर कर सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत नहीं है या आक्षेपित कानून द्वारा अधिरोपित कर न तो सूची 2 की प्रविष्टि 49 और न ही सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है तो यह कहना मनमाना होगा कि वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत नहीं आता है। हमें सूची 1 की प्रविष्टि 86 के 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्दों से अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 की व्यापकता को सीमित करना असम्भव जान पड़ता है। हमें प्रविष्टि 97 में 'कोई अन्य विषय' शब्दों को पढ़ने से यह अभिप्रेत नहीं होता है कि इन शब्दों का सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 में अपवर्जित विषयों के प्रति कोई निर्देश है। यह एक दम साफ है कि 'कोई अन्य विषय' शब्दों का उन विषयों के प्रति निर्देश है जिनके बारे में संसद् को सूची 1 की प्रगणित प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 द्वारा विधान करने की शक्ति दी गई है न कि उन विषयों के बारे में जिनके लिए संसद् को विधान करने की शक्ति नहीं दी गई है। सूची 1 की प्रविष्ट 86 का विषय सम्पूर्ण प्रविष्टि है और 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्दों के बिना प्रविष्टि नहीं है। इसके अतिरिक्त सूची 1 की प्रविष्टि 86 का विषय आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर नहीं है बल्कि सम्पूर्ण प्रविष्टि है। हम कुछ अन्य प्रविष्टियों का उल्लेख करके इस बात का दृष्टान्त देंगे। सूची 1 की प्रविष्टि 9 में 'भारत की प्रतिरक्षा, विदेशी कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध' में निवारक निरोध ही विषय नहीं है बल्कि सम्पूर्ण प्रविष्टि है। इसी प्रकार सूची 3 की प्रविष्टि 3 में 'राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने से अथवा समुदाय के लिए अत्यावश्यक सम्भरणों और सेवाओं को बनाए रखने से संसक्त कारणों से निवारक निरोध' में निवारक निरोध ही विषय नहीं है बल्कि सम्पूर्ण प्रविष्टि है। यह कहना गलत होगा कि सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 4 एक ही विषय के सम्बन्ध में है। इसी प्रकार हमारा यह विचार है कि सूची 1 की प्रविष्टि 82 (कृषि आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर) के बारे में यह मानना गलत होगा कि उसमें दो विषय हैं एक विषय 'आय पर कर' और दूसरा विषय 'कृषि आय को छोड़ कर कर'। ऐसे और अनेक दृष्टान्त देने से कोई फायदा नहीं होगा।

21. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्ट 96 के साथ पठित अनुच्छेद 246 (1) का उद्देश्य संसद् को इन प्रविष्टियों के सम्बन्ध में विधान बनाने की शक्ति प्रदान करना है। इसका यह उद्देश्य नहीं है कि संसद् को किसी ऐसे विषय पर विधान बनाने से विवर्जित कर दिया जाए भले ही संविधान के अन्य उपबन्ध ऐसा करने के लिए उसे समर्थ बनाते हों। तदनुसार हमें सूची 1 की प्रविष्ट 97 में आने

1971(10) eILR(PAT) SC 1

वाले 'कोई अन्य विषय' शब्दों का निर्वचन इस प्रकार नहीं करना चाहिए जिससे यह अभिप्रेत हो कि अपवर्जन के रूप में कोई विषय वर्णित किया गया है। ये शब्द वस्तुतः उन विषयों के प्रति निर्देश करते हैं जो प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 में से हर एक प्रविष्टि में अन्तर्विष्ट हैं। 'कोई अन्य विषय' शब्दों का प्रयोग इसलिए करना पड़ा क्योंकि सूची 1 की प्रविष्टि 97 सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 तक के पश्चात् आती है। यह सच है कि सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 द्वारा विधान बनाने के क्षेत्रों का सीमांकन किया गया है, किन्तु इस सीमांकन से यह अभिप्रेत नहीं है कि यदि सूची 1 की प्रविष्टि 97 अतिरिक्त शक्तियां प्रदत्त करती है तो हमें उसे लागू करने से इन्कार करना चाहिए। चाहे जो भी हो सूची 1 की प्रविष्टि 97 के निर्वचन में जो भी संदेह हो वह अनुच्छेद 248 के व्यापक शब्दावली से दूर हो जाता है। अनुच्छेद 248 यथासम्भव व्यापक शब्दावली में विरचित किया गया है उसकी शब्दावली के अनुसार एकमात्र प्रश्न यह पूछा जा सकता है कि—क्या जिस विषय के बारे में विधान बनाना चाहा गया वह सूची 2 या सूची 3 में शामिल है या क्या जिस कर को उद्गृहीत करना चाहा गया है वह सूची 2 या सूची 3 में वर्णित है ? सूची 1 के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। यदि उत्तर नकारात्मक है तब यह निष्कर्ष निकलता है कि संसद् को उस विषय या कर के बारे में विधियां बनाने की शक्ति है।

22. यह बात याद रखने की है सूचियों का काम शक्तियां प्रदान करना नहीं है। वे केवल विधायी क्षेत्र का सीमांकन करती हैं। फैडरल न्यायालय ने **गवर्नर जनरल इन काउन्सिल** बनाम **बेले इन्वेस्टमेण्ट कम्पनी** (1) में गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट का निर्वचन करते हुए यह मत व्यक्त किया—

> "सूची में केवल इसके प्रति निर्देश करके इस विषय पर विधान बनाने की शक्ति देने का अर्थ निकालना ठीक नहीं होगा क्योंकि सूचियों का प्रयोजन शक्तियां सृजित या प्रदत्त करना नहीं था बल्कि फैडरल और प्रान्तीय विधानमण्डलों के बीच उन शक्तियों का वितरण करना था जो ऐक्ट की धारा 99 और 100 द्वारा प्रदत्त की गई थीं।"

23. **हरकचन्द रतनचन्द बन्थिया** बनाम **भारत संघ** (2) में स्वर्ण (नियन्त्रण) अधिनियम, 1968 (1968 का 45) पर विचार करते हुए न्यायालय की ओर से न्यायाधिपति रामस्वामी ने यह मत व्यक्त किया—

> "इन प्रविष्टियों का अर्थ लगाने से पूर्व फैडरल न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा प्रविष्टियों के अर्थ लगाने के मामलों में अधिकथित निर्वचन से कुछ सुनिश्चित नियमों की ओर ध्यान देना लाभप्रद होगा। संविधान के अनुच्छेद 246 द्वारा समुचित विधानमण्डलों को विधि बनाने की शक्ति दी गई है। तीनों सूचियों की प्रविष्टियां केवल विधायी शीर्ष या विधान के क्षेत्र हैं, वे उस क्षेत्र का सीमांकन करती है जिसके सम्बन्ध में विधान समुचित विधानमण्डल बना सकता है।"

---

(1) (1944) एफ० सी० आर० 229, 261.
(2) (1970) 2 उम० नि० प० 460, 479=(1970) 1 एस० सी० आर० 479, 489.

24. हम अनुच्छेद 248 को पूरी तरह लागू करने के लिए विवश हैं क्योंकि हम अर्थान्वयन का कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जानते हैं जिसके द्वारा हम अनुच्छेद 248 जैसे आधारभूत अनुच्छेद के व्यापक शब्दों को अनुसूची 7 की किसी प्रविष्टि के शब्दों द्वारा घटा सकते हैं। यदि प्रत्यर्थी की दलील को मान लिया जाए तो अनुच्छेद 248 का इस प्रकार पुनः प्रारूपण करना होगा—

> "संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में अवर्णित है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है परन्तु वह सूची 1 की किसी प्रविष्टि में अपवर्जन के रूप में वर्णित नहीं किया गया है।"

हमें अनुच्छेद 248 के साथ इस प्रकार का परन्तुक जोड़ने की कोई शक्ति नहीं है।

25. हम यह भी बता देना चाहते हैं कि हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं रखी गई है जिससे यह आशय दर्शित होता हो कि संविधान बनाने वाले किसी भी व्यक्ति के दिमाग में यह बात रही हो कि इस देश में सभी विधानमण्डलों को किसी विशिष्ट विषय पर विधान करने से प्रतिषिद्ध किया जाए।

26. श्री पालखीवाला ने यूनियन पावर्स कमेटी की तारीख 5 जुलाई, 1947 वाली रिपोर्ट के पैरा 2 से निम्नलिखित उद्धरण के प्रति निर्देश किया (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड 5, पृष्ठ 58)—

> "हमारा यह विचार है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास रहनी चाहिएं। किन्तु हमने जो तीनों सूचियां तैयार की हैं उनकी सर्वांगीण प्रकृति को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि अवशिष्ट विषय केवल ऐसी बातों के बारे में हो सकते हैं जो भविष्य में भले ही मान्य हों किन्तु इस समय उनके बारे में कुछ मालूम नहीं है। इसलिए उन्हें इन सूचियों में शामिल नहीं किया जा सकता है।"

27. श्री पालखीवाला ने इस उद्धरण के आधार पर यह कहा है कि 'शुद्ध धन' पर कर की बात तो सभी को भलीभांति ज्ञात है और यदि उसे शामिल करना चाहा गया होता तो उसका उल्लेख किया गया होता।

28. हमारा यह विचार है कि यह निर्वचन करने का विधिसम्मत तरीका नहीं है। इन डिबेटों से यह दर्शित होता है कि इस बात के होते हुए भी कि संविधान सभा के सदस्य कुछ करों के बारे में जानते थे फिर भी उनका उल्लेख अन्तिम सूचियों में नहीं किया गया था। किन्तु यह दलील नहीं दी जा सकती कि वे अवशिष्ट शक्तियों के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

29. वित्तीय उपबन्धों (फिनैन्शल प्रोविजन्स) पर विशेषज्ञ समिति (एक्सपर्ट कमेटी) की तारीख 5 दिसम्बर, 1947 वाली रिपोर्ट में (कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 7, पृष्ठ 53) में यह कहा गया है कि निर्देश पद (टर्म्स आफ रेफ्रेन्स) में से एक यह था कि—

> "(ix) इस आधार पर कि अवशिष्ट शक्तियां नए संविधान में, जहां तक कि प्रान्तों का सम्बन्ध है, केन्द्र में निहित हैं और जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है राज्यों में निहित हैं, क्या यह आवश्यक है कि कोई भी अतिरिक्त विनिर्दिष्ट कर प्रान्तीय

सूची में प्रविष्ट किया जाना चाहिए और यदि ऐसा है तो किसे प्रविष्ट किया जाना चाहिए ?"

कमेटी ने पैरा 72 में इस प्रकार रिपोर्ट दी—

"ऐसा प्रतीत होता है कि नए संविधान के अधीन अवशिष्ट शक्तियां, जहां तक कि प्रान्तों का सम्बन्ध है, केन्द्र में निहित होंगी, जब कि राज्यों के सम्बन्ध में तत्सम्बन्धी अवशिष्ट शक्तियां स्वयं राज्यों में ही निहित होंगी। अतः यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या इसके परिणामस्वरूप उन सभी विनिर्दिष्ट करों को, जो सम्भव हों, विषयों की प्रान्तीय सूची में प्रविष्ट नहीं किया जाना चाहिए ? हम प्रान्तों द्वारा उद्ग्रहणीय किसी ऐसे महत्त्वपूर्ण नए कर की कल्पना नहीं कर पा रहे हैं जो प्रान्तीय सूची में सम्मिलित विद्यमान कोटियों में से किसी एक या अन्य के अन्तर्गत न आए। हमारा यह विचार है कि प्रस्थापित संवैधानिक स्थिति से कोई व्यवहारिक कठिनाई उठाने की सम्भावना बहुत कम है और चाहे जो भी हो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि केन्द्र द्वारा अपनी अवशिष्ट शक्तियों के अधीन कोई कर उद्गृहीत किया जाता है तो ऐसी कोई बात नहीं होगी जो इस सम्पूर्ण कर को या इसके किसी भाग को केवल प्रान्तों के फायदे के लिए वितरित करने से रोके। लेकिन अत्यधिक सावधानी के रूप में संविधान में यह अधिकथन किया जा सकता है कि यदि भविष्य में कोई कर केन्द्र द्वारा अपनी अवशिष्ट शक्तियों के अधीन उद्गृहीत किया जाता है और तत्सम्बन्धी विषय के सम्बन्ध में राज्य केन्द्र से सहमत होना नहीं चाहते हैं तो उसी सीमा तक उस कर के सम्पूर्ण आगम या उनका कोई भाग केवल प्रान्तों और प्रवेशी राज्यों के बीच किया जाएगा।

इससे निर्देश-पद के विषय 9 का निपटारा हो जाता है।"

कमेटी ने कुछ अनुच्छेदों के लिए सिफारिश की थी—

*"198. नमक-शुल्क और उत्पाद शुल्क—

(1) संघ द्वारा नमक पर कोई शुल्क उद्गृहीत नहीं किया जाएगा।

× × × ×"

"198-क. नवम अनुसूची की सूचियों में से किसी भी सूची में अप्रगणित कर यदि संविधान की नवम अनुसूची की सूचियों में से किसी भी सूची में कोई अवर्णित कर फैडरल विधायी सूची की प्रविष्टि 90 के आधार पर फैडरल

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"198. Salt duties and excise duties—

(1) No duties on salt shall be levied by the Federation.

× × × ×"

"198-A. Taxes not enumerated in any of the lists in the Ninth Schedule. If any tax not mentioned in any of the lists in the Ninth Schedule to this Constitution is imposed by Act of the Federal

पार्लियामेण्ट के ऐक्ट द्वारा अधिरोपित किया जाता है तो ऐसा कर फैडरेशन द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत किया जाएगा किन्तु किसी ऐसे कर के किसी वित्तीय वर्ष में शुद्ध आगामों की विहित प्रतिशतता, सिवाय वहां तक जहां तक कि वे आगम मुख्य आयुक्तों के प्रान्तों के आगम हों, संघ के राजस्व का भाग नहीं होंगे किन्तु उन एककों को समनुदिष्ट किए जाएंगे जिनके भीतर उस वर्ष में वह कर उद्ग्रहणीय है और वह उन एककों के बीच वितरण के ऐसे सिद्धान्तों के अनुसार वितरित किया जाएगा, जैसे विहित किए जाएं।"

30. कमेटी ने आगे यह भी सिफारिश की कि नवम अनुसूची की प्रान्तीय विधायी सूची में प्रविष्टि 50 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रख दी जाए अर्थात्—

*"50. प्रान्त के भीतर माल के विक्रय, आवर्त या क्रय पर करों के लिए दायी माल के प्रान्त के भीतर उपयोग या उपभोग पर माल के विक्रय, आवर्त या क्रय पर कर जिनके अन्तर्गत उनके बदले में कर आते हैं, विज्ञापन पर कर।"

31. इससे दो बातें पैदा होती हैं। संविधान सभा को यह ज्ञात था कि संसद् को किसी कर के उद्ग्रहण से कैसे प्रतिषिद्ध किया जाए (देखिए ऊपर वर्णित प्रस्थापित अनुच्छेद 198-क)। दूसरी बात यह कि संविधान सभा को कुछ ऐसे करों के बारे में ज्ञान था जो माल के उपयोग या उपभोग पर कर थे। उन्हें प्रान्तीय अनुसूची में शामिल करने की प्रस्थापना स्वीकार नहीं की गई थी। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने इस प्रस्थापना के सम्बन्ध में निस्संदेह यह कहा था—(कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 7, पृष्ठ 232)—

"महोदय, एक्सपर्ट कमेटी की एक और सिफारिश के बारे में मुझे आशंका है कि वह कुचेष्टापूर्ण है। वह यह है कि कमेटी ने विक्रय कर के सम्बन्ध में, जो सूची 2 की मद 58 है—यह सुझाव दिया है कि परिभाषा का इतना विस्तार कर दिया जाना चाहिए जिससे कि उसमें उपयोग-कर (यूज़ टैक्स) भी शामिल हो जाए। यह निस्सन्देह अमरीकन स्टेट यूज़ टैक्स के अनुभव के आधार पर है। मेरा यह विचार है कि यह अनिष्टकारी सिफारिश है। मेरे विचार में मद 58 में विक्रय कर के उल्लेख से इसका संकेत मिलता है जो कि उसमें नहीं होना चाहिए।"

32. यदि संसद् उपयोग-कर का उद्ग्रहण करता है तो इसे इस आधार पर इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसे अवशिष्ट शक्तियों में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि

Parliament by virtue of entry 90 of the Federal Legislative List, such tax shall be levied and collected by the Federation but a prescribed percentage of the net proceeds in any financial year of any such tax except in so far as those proceeds represent proceeds attributable to Chief Commissioners' Provinces, shall not form part of the revenue of the Federation, but shall be assigned to the units within which that tax is leviable in that year, and shall be distributed among the units in accordance with such principles of distribution as may be prescribed".

संविधान बनाने के समय कर के बारे में ज्ञान था। निस्सन्देह यह निर्वचन का ठीक सिद्धान्त प्रतीत नहीं होता जिसे पहले यह अभिनिश्चित करने के लिए अपनाया जाए कि किसी कर के बारे में संविधान-निर्माताओं को ज्ञान था या नहीं और उसे अवशिष्ट शक्तियों में तभी शामिल किया जाए जब संसद् को उसके बारे में ज्ञान न हो। यह ऐसी कसौटी है जिसे लागू करना असम्भव होगा। क्या न्यायालय को संविधान सभा के सदस्यों से कहना होगा कि वे साक्ष्य दें या क्या न्यायालय को इस बात की उपधारणा करनी होगी कि संविधान सभा के सदस्यों को उन सभी सम्भव करों के बारे में ज्ञान था जो कि समस्त संसार में उद्गृहीत किए जा रहे थे? हमारा मत यह है कि हमारे संविधान जैसा संगठनात्मक लिखत (आरगनिक इन्स्ट्रूमेण्ट) के अनुच्छेद या अनुच्छेदों के निर्वचन करने का एकमात्र निरापद मार्ग यही है कि प्रयुक्त भाषा पर ध्यान दिया जाए और उसका निर्वचन संकीर्ण अर्थ में नहीं बल्कि संविधान के व्यापक और उदात्त प्रयोजनों के प्रकाश में भली भांति किया जाए, किन्तु ऐसा करने में भाषा को बिगाड़ना नहीं चाहिए। प्रत्यर्थी ने जो सुझाव दिया है यदि हम उस प्रकार अनुच्छेद 248 का निर्वचन करें तो हमारी यह राय है कि ऐसा करना भाषा को बिगाड़ना होगा।

33. किन्तु डिबेटों से निम्नलिखित उद्धरणों में यह देख कर हमें प्रसन्नता है कि हमारा निर्वचन उससे मेल खाता है जो आशयित है।

34. संविधान के प्रारूप में प्रविष्टि 91 वर्तमान सूची 1 की प्रविष्टि 97 के तत्समान है। संविधान के प्रारूप का अनुच्छेद 217 संविधान के अनुच्छेद 246 के तत्समान है। प्रारूप संविधान का अनुच्छेद 223 संविधान के अनुच्छेद 248 के तत्समान है।

35. प्रारूप संविधान की सूची 1 की प्रविष्टि 91 पर विचार-विमर्श करते हुए सरदार हुकम सिंह ने निम्नलिखित संशोधन पेश किया—

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 91 में 'अन्य' शब्द हटा दिया जाए"

प्रस्थापित संशोधन की डिबेटों के उद्धरण नीचे दिए जाते हैं—

सरदार हुकम सिंह (कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 9, पृष्ठ 854)

"इस प्रविष्टि 91 का उद्देश्य यह है कि सूची 2 और 3 में जो कुछ भी सम्मिलित नहीं है उसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि उसे इस सूची में सम्मिलित किया गया है। मेरा यह विचार है कि यह बात बहुत ही साधारण शब्दों में कही जा सकती है, यदि 'अन्य' शब्द हटा दिया जाए तो इस सूची की कतई जरूरत नहीं होगी। आखिरकार यह बात यों है कि सूची 2 और 3 में जो कुछ भी शामिल नहीं है वह सब संघ सूची में सम्मिलित है। यह बात बहुत ही साधारण शब्दों में कही जा सकती है और हमने जितनी तकलीफ उठाई है उतनी तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं थी।"

श्री नजीरुद्दीन अहमद (कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 9, पृष्ठ 855)

"श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, मैं प्रविष्टि 91 का विरोध नहीं करना चाहता। ऐसा करने के लिए अब बहुत देर हो चुकी है किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जिस समय हमने प्रविष्टि 91 रखना स्वीकार किया था उसी समय हमें कुछ

1971(10) eILR(PAT) SC 1

अनुच्छेदों और प्रविष्टियों का गम्भीरता से पुन: प्रारूपण करना चाहिए था। अनुच्छेद 217 के अधीन हमने सारत: यह कथन किया है कि सूची 1 की प्रविष्टियां संघ की होंगी, सूची 2 राज्यों की होगी और सूची 3 दोनों के लिए सामान्य होगी। गवर्नमेंण्ट आफ इण्डिया ऐक्ट से मूलत: यही व्यवस्था ली गई थी। जब इसे पूर्वतर प्रक्रम में प्रविष्टि 91 पर विचार किया गया था उस समय हमने यह सहमति प्रकट की थी कि अवशिष्ट शक्ति केन्द्र के पास होनी चाहिए। यह एक नई बात थी क्योंकि इस तरह की कोई बात गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट में नहीं थी। ज्यों ही हम प्रविष्टि 91 को स्वीकार कर लेते हैं त्यों ही अनुच्छेद 217 और कुछ अन्य अनुच्छेदों का पुन: प्रारूपण करना अपेक्षित हो जाता है और प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 90 व्यर्थ हो जाएंगी। वस्तुत: सभी पूर्व प्रविष्टियां 1 से 90 तक बिल्कुल ही अनावश्यक हो जाएंगी। अब प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 90 रखने में हमें कोई तुक नहीं दिखाई देता। यदि हर विषय, जिसका वर्णन सूची 2 और 3 में नहीं किया गया है, केन्द्र के पास रहना है तो सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 90 को प्रगणित करने की क्या आवश्यकता है ? वह तो नितान्त अनावश्यक दुष्कर ब्यौरे देने के समान है। अनुच्छेद 217 का पुन: प्रारूपण करने से सभी उलझनें दूर हो जाएंगी और सब बातें आसान हो जाएंगी जब उसमें यह कहा जाए कि सूची 2 में प्रगणित सभी विषय राज्यों के होने चाहिए और सूची 3 में प्रगणित सभी विषय केन्द्र को और साथ ही साथ राज्यों को समनुदेशित किए जाते हैं और ऐसा प्रत्येक विषय जिसे सोचा जा सकता हो, केन्द्र के अधिकार क्षेत्र के भीतर ही आना चाहिए। इससे अधिक आसान और तर्कयुक्त बात कोई नहीं हो सकती। इसके बजाय एक लम्बी विस्तृत सूची अनावश्यक रूप से सम्मिलित कर ली गई है। ऐसा केवल इसलिए किया गया है क्योंकि सूची 1 पहले से ही तैयार कर ली गई थी और प्रविष्टि 91 बाद में विचार करके उसमें रख दी गई। जैसे ही प्रविष्टि 91 को स्वीकार किया गया था उसी समय प्रारूपण को तदनुसार बदल देना चाहिए था। अनुच्छेद 217 को उपर्युक्त बातों के अनुसार पुन: लिखा जाना चाहिए था और अब इतने दिन बाद जो बात होनी चाहिए वह यह है कि इन अनावश्यक प्रविष्टियों को हटा दिया जाए और अनुच्छेद 217 को पुन: लिखा जाएं और सारी बातें आसान कर देनी चाहिएं ? मेरे पास उस आशय का एक संशोधन था किन्तु मैंने उसे पेश नहीं किया क्योंकि मैं जानता था कि संशोधन के जो भी कारण थे उन पर सदन विचार करना उचित नहीं समझता।"

प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना (कांस्टिट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 9, पृष्ठ 855-856)।

"महोदय, आज का दिन महत्वपूर्ण है कि हम इस प्रविष्टि को बिना विचार-विमर्श किए पारित कर रहे हैं यह विषय कई वर्षों से अर्थात् लगभग दो दशकों से इस देश में विचार-विमर्श का विषय रहा है। आज इसे बिना किसी विचार-विमर्श के पारित होने दिया जा रहा है। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का दृष्टिकोण सही नहीं है। डाक्टर अम्बेदकर ने वस्तुत: यह कहा है कि यदि कोई

विषय छूट जाता है तो उसे इस मद 91 में सम्मिलित किया जाएगा। अतः मेरा यह विचार है कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रविष्टि है। मद 1 से मद 90 में से किसी को भी हटाया नहीं जाना चाहिए। मैं यह जानता हूं कि इस प्रविष्टि में वे सभी विषय होंगे जोकि प्रथम 90 प्रविष्टियों में पहले से ही सम्मिलित हैं और जो कुछ छूट गया है वह भी सम्मिलित है। यह प्रविष्टि केन्द्र को मजबूत बनाएगी और हमारा राष्ट्र एक राष्ट्र के रूप में संगठित होगा जिसमें केन्द्र की स्थिति मजबूत होगी। पिछले पूरे दशक में झगड़ा इस बात का था कि प्रान्तीय स्वायतता इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि केन्द्र प्रान्तों में हस्तक्षेप न कर सके, किन्तु अब समय बदल गया है। अब हम मज़बूत केन्द्र चाहते हैं। वस्तुतः कुछ मित्रगण प्रान्तीय स्वायत्तता को हटा देना चाहेंगे और एकात्मक (यूनिटरी) सरकार चाहेंगे। यह प्रविष्टि केन्द्र को शक्तियां प्रदान करती है कि वह किसी ऐसे विषय पर विधान बना सके जो सदन की संवीक्षा से बच गया है। मैं इस प्रविष्टि का समर्थन करता हूं।

माननीय डा० बी० बी० अम्बेदकर (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड 9, पृष्ठ 856-857)

"श्रीमान अध्यक्ष महोदय, मैं उस आक्षेप पर विचार-विमर्श करना चाहता हूं जो मेरे मित्र सरदार हुकम सिंह ने किया है। मेरा यह विचार है कि उन्होंने इस बात को नहीं समझा है कि प्रविष्टि 91 का प्रयोजन क्या है और इसलिए मैं स्पष्ट रूप से यह बता देना चाहता हूं कि सूची 1 की प्रवष्टि 91 का प्रयोजन क्या है। इसका प्रयोजन वस्तुतः सूची 1 की सीमा या प्रविषय को परिभाषित करना है और मेरा यह विचार है कि हम इस विषय पर अर्थात् सूची 2 और 3 के प्रविषय की परिभाषा के सम्बन्ध में प्रविष्टि 67 जैसी प्रविष्टि जोड़ कर विचार कर सकते थे। वह प्रविष्टि इस प्रकार है—

"कोई विषय जो सूची 2 और 3 में सम्मिलित नहीं किया गया है उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह सूची 1 के अन्तर्गत आता है।" वस्तुतः यही उसका प्रयोजन है। यह बात दो तरीकों से हो सकती थी। या तो सूची 1 में प्रविष्टि शामिल करके या ऐसी प्रविष्टि शामिल करके जैसा कि मैंने सुझाव दिया है कि 'कोई विषय जो सूची 2 या 3 में सम्मिलित नहीं है वह सूची 1 के अन्तर्गत आएगा, यही उसका प्रयोजन है। किन्तु ऐसी प्रविष्टि आवश्यक है और उसके बारे में कोई प्रश्न नहीं हो सकता। अब मैं दूसरे आक्षेप पर आता हूं जोकि कई बार दोहराया गया है, चाहे उसे स्पष्ट रूप से नहीं दोहराया गया है किन्तु कानाफूसी अवश्य हुई है कि सूची 4 में ये 91 प्रविष्टियां हम क्यों रख रहे हैं जबकि वस्तुतः हमारे पास अनुच्छेद 223 जैसा अनुच्छेद है जिसे अवशिष्ट अनुच्छेद कहा जाता है और वह इस प्रकार है—'संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं हैं, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। सिद्धान्ततः मैं इस प्रस्थापना को बिल्कुल स्वीकार करता हूं कि जब कोई विषय सूची 2 या सूची 3 में सम्मिलित नहीं है तब वह संविधान के विनिर्दिष्ट अनुच्छेद द्वारा केन्द्र को दिया गया है। सूची 1 में जो हमने विषय विनिर्दिष्ट किए हैं उन्हें इन कोटियों में प्रगणित करना

अनावश्यक है। ऐसा क्यों किया गया है इसका कारण यह है कि बहुत से राज्यों के लोग विशिष्टतया देशी राज्यों के लोग संविधान सभा के आरम्भ में ही विशेष रूप से यह जानना चाहते थे कि केन्द्र की विधायी शक्तियां क्या हैं। वे स्पष्टतया और विशिष्टतया जानना चाहते थे; वे इस बात से सन्तुष्ट नहीं होते थे कि केन्द्र को केवल अवशिष्ट शक्तियां ही प्राप्त होंगी। प्रान्तों के अन्देशों और देशी राज्यों के अन्देशों का निराकरण करने के लिए हमें यह विशिष्ट रूप से बताना पड़ा है कि प्रतीकात्मक उक्ति 'अवशिष्ट शक्तियों' में क्या शामिल है। यही कारण है कि हमें यह श्रम क्यों करना पड़ा। इस बात के होते हुए भी कि हमारे पास अनुच्छेद 223 है।

मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में कोई बहुत हास्यास्पद बात नहीं है। जहां तक हमारे संविधान का सम्बन्ध है उसका साधारण कारण यह है कि सभी फैडरल संविधानों की यह पद्धति रही है कि केन्द्र की शक्तियों को प्रगणित किया जाए, उन फेडरेशनों ने भी केन्द्र की शक्तियां प्रगणित की हैं जिन्होंने अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दी हुई हैं। उदाहरणार्थ कनाडा का संविधान लीजिए। भारतीय संविधान के समान कनाडा का संविधान भी कनाडा के संसद् को ऐसी शक्तियां प्रदान करता है जिन्हें अवशिष्ट शक्तियां कहा जाता है। कुछ विनिर्दिष्ट और प्रगणित शक्तियां प्रान्तों को प्रदान की जाती हैं। इस तथ्य के होते हुए भी, कनाडा के संविधान में मेरा विचार है, अनुच्छेद 99 में कुछ ऐसी कोटियां और कुछ ऐसी प्रविष्टियां प्रगणित की गई हैं जिनके बारे में कनाडा की संसद् विधान बना सकती है। यह भी उन फ्रांसीसी प्रान्तों के अन्देशों का निराकरण करने के लिए किया गया था जो कनाडा संघ का भाग होने जा रहे थे। इसी प्रकार गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट में भी वही स्कीम अधिकथित की गई है और गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 104 अनुच्छेद 223 के समान है। इसमें भी यह प्रस्थापना अधिकथित की गई है कि केन्द्रीय सरकार को अवशिष्ट शक्तियां प्राप्त होंगी। इस बात के होते हुए भी इस संविधान की अपनी सूची 1 है। इसलिए इस बात का कोई कारण और आधार नहीं है कि इस विषय पर अत्यधिक तर्क-वितर्क किया जाए। ऐसा करके हमने विभिन्न प्रान्तों की, विनिर्दिष्टतया यह जानने की, अपेक्षाओं को पूरा किया है कि अवशिष्ट शक्तियां क्या हैं और हमने किन अन्य फेडरल संविधानों का अनुसरण किया है। मेरा यह विश्वास है कि सदन न तो मेरे मित्र सरदार हुकम सिंह के संशोधन को स्वीकार करेगा और न ही मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को गम्भीरतापूर्वक ध्यान देगा।"

36. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस विचार-विमर्श से स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि इस बात को समझ लिया गया था कि पुरानी प्रविष्टि 91 के अन्तर्गत ऐसा हर विषय आ जाएगा जो सूची 2 और 3 में सम्मिलित नहीं है और वे प्रविष्टियां कनाडा के संविधान के दृष्टान्त का अनुसरण करते हुए और प्रान्तों को तथा विशिष्टतया देशी राज्यों को यह सूचित करने के लिए सूची 1 में प्रगणित की गई थीं कि संघ की विधायी शक्तियां क्या होंगी।

37. यदि हम उन भाषणों पर भी विचार करें जो उस समय दिए गए थे जबकि संविधान को तीसरी पढ़त की जा रही थी तो यही निष्कर्ष निकलता है। इन भाषणों के उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं—

श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड 11, पृष्ठ 838),

"विधायी शक्तियों के वितरण और आबन्टन के सम्बन्ध में इस सभा ने वर्तमान स्थिति में इस देश में प्रचलित राजनैतिक और आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखा है और इससे फेडरल सरकार के संविधान में वितरण के सिद्धान्त के सम्बन्ध में किसी पूर्वसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार कार्यवाही नहीं की है। वितरण के सम्बन्ध में केन्द्र में अवशिष्ट शक्ति निहित की गई है, राष्ट्रीय और अखिल भारतीय महत्व के विनिर्दिष्ट विषयों का अभिव्यक्त रूप से वर्णन किया गया है।"

श्री टी० टी० कृष्णमचारी (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली डिबेट्स, खण्ड 11, पृष्ठ 952-954),

"इस सम्बन्ध में मैं अवशिष्ट शक्तियों के विनिधान के सम्बन्ध में उठाए गए प्रश्न पर विचार-विमर्श करूंगा। मेरा यह ख्याल है कि एक से अधिक माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस तथ्य से कि अवशिष्ट शक्ति हमारे संविधान के अनुसार केन्द्र में निहित है, संविधान एकात्मक (यूनिटरी) संविधान बन जाता है। मेरा यह ख्याल है कि इस बात पर मेरे माननीय मित्र श्री गुप्त ने अपने भाषण के दौरान ज़ोर दिया था। श्री गुप्त ने यह कहा कि 'कसौटी तो है। अवशिष्ट शक्ति केन्द्र में निहित है।' मैं अपने मित्र श्री गुप्त की बात को गम्भीर रूप से ले रहा हूं क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि वे बहुत सतर्क विद्यार्थी हैं क्योंकि उन्होंने यह विशिष्ट बात संघवाद पर किसी पाठ्य पुस्तक से निकाली है। मैं माननीय सदस्यों को यह बता देना चाहूंगा कि निर्धारण करने में यह बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है कि क्या कोई विशिष्ट संविधान इस दृष्टिकोण से कि क्या अवशिष्ट शक्ति राज्यों में या केन्द्रीय सरकार में निहित हैं, फैडरल पद्धति पर आधारित है। श्री के० सी० ह्विवर ने, जिन्होंने, संघवाद (फेडरलिज़म) पर हाल ही में एक पुस्तक लिखी है, इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया है।"

"अब आप यदि मुझसे यह पूछें कि हमने वस्तुत: अवशिष्ट शक्ति केन्द्र के पास क्यों रखी है और क्या इससे कुछ अभिप्रेत है तो मैं यह कहूंगा कि ऐसा इसलिए है क्योंकि हमने केन्द्र और राज्यों की शक्तियों को तथा उन शक्तियों को, जिनका प्रयोग समवर्ती क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों द्वारा किया जाना है, बहुत विस्तार से प्रगणित किया है। वस्तुत: प्रोफेसर ह्विवर का उद्धरण देते हुए, जिन्होंने गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट का बाह्य सर्वेक्षण किया है, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट में सर्वोत्तम बात अनुसूची 7 में शक्तियों का पूर्ण और सांगोपांग प्रगणन किया गया है। **मेरे ख्याल में एक ही शक्ति की सम्भावना दिखाई देती है जोकि प्रगणित नहीं की गई है, जिसका प्रयोग भविष्य में अवशिष्ट शक्ति के उपयोग के माध्यम से किया जा सकेगा अर्थात् कृषि भूमि पर पूंजी उद्ग्रहण। यह शक्ति न**

तो केन्द्र को और न ही एककों को समनुदिष्ट की गई है। ऐसा हो सकता है कि शहरी और कृषि सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क और उत्तराधिकार शुल्क की स्कीम का अनुसरण करते हुए, यदि केन्द्र को कुछ समय के पश्चात् इस शक्ति को अवशिष्ट शक्ति के अधीन अपने हाथ में ले लेना पड़े तो केन्द्र इस उद्ग्रहण के आगामों को प्रान्तों को समनुदिष्ट कर देगा क्योंकि जिन चीजों के बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका सम्बन्ध कृषि से है वे प्रान्तों को समनुदिष्ट की जाती है। मेरा यह ख्याल है कि अवशिष्ट शक्ति का निहित किया जाना आज एक सैद्धान्तिक महत्व की बात है। यह कहना कि चूंकि अवशिष्ट शक्ति केन्द्र में निहित है न कि प्रान्तों में, इसलिए यह फेडरेशन (संघ) नहीं है, ठीक नहीं होगा।"

38. श्री टी० टी० कृष्णमचारी के उपर्युक्त भाषण से यह दर्शित होता है कि सदस्यों को इस बात का ज्ञान था कि कुछ ज्ञात करों को इन तीनों सूचियों में विनिर्दिष्टतया सम्मिलित नहीं किया गया था।

39. अतः इस निष्कर्ष से बच निकलना बहुत कठिन है कि भारत में विधान का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो या तो संसद् को या राज्य विधानमण्डलों को आबंटित न किया गया हो। **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा**(1) में लार्ड जोविट्ट, एल० सी० ने **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा**(2) में लोरबर्न, एल० सी० के निम्नलिखित शब्दों की याद दिलाई थी—

"अब इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि इस संमरणात्मक लिखत के अधीन एक ओर डोमीनियन और दूसरी ओर प्रान्तों के बीच वितरित शक्तियों के अन्तर्गत कनाडा के सम्पूर्ण क्षेत्र के भीतर स्वायत्त शासन का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है। यह धारणा करना कि आन्तरिक स्वायत्त शासन की कोई बात कनाडा को नहीं दी गई थी, ऐक्ट की समस्त स्कीम और नीति के लिए हानिकर होगा।"

40. अन्तिम वाक्य सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के संविधान को और भी अधिक रूप से लागू होता है। यह सच है कि संविधान के भाग 3 में भारत के विधानमण्डलों पर कुछ सीमाएं लगाई गई हैं, किन्तु उनका स्वरूप भिन्न है। उनका विधायी सक्षमता से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि संसद् की अवशिष्ट शक्तियों का यही सही प्रविषय है तब हम यह समझ नहीं पा रहे हैं कि क्यों न हम, जबकि हम केन्द्रीय अधिनियम पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, यह जांच करें कि क्या इस सूची 2 में किसी विषय के सम्बन्ध में विधान है क्योंकि केवल यही एक क्षेत्र है जिसके सम्बन्ध में संसद् पर प्रतिषेध है। यदि केन्द्रीय अधिनियम इन प्रतिषिद्ध क्षेत्रों में प्रवेश नहीं करता या उन पर आक्रमण नहीं करता तो इस बात का विनिश्चय करने का प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि सूची 1 या सूची 3 की किस प्रविष्टि या किन प्रविष्टियों के अन्तर्गत कोई केन्द्रीय अधिनियम पूर्णतया आएगा।

---

(1) (1948) ए० सी० 127, 150.

(2) (1912) ए० सी० 571, 581.

41. यह स्वीकार किया गया है कि यह कसौटी कनाडा में लागू की गई थी, किन्तु यह दलील दी गई है कि कनाडा का संविधान भारतीय संविधान से बिल्कुल भिन्न है। यह सच है कि कनाडा के संविधान की धारा 91 और 92 के शब्द भिन्न हैं और जुडीशियल कमेटी ने इन धाराओं का भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न निर्वचन किया है, लेकिन जो कुछ भी निर्वचन किया गया हो कमेटी ने सदा यह अभिनिर्धारित किया है कि सूचियां सांगोपांग हैं। डोमीनियन और प्रान्तों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम निश्चित रूप से वही है जैसे हमारे संविधान में है। इस विषय पर जुडीशियल कमेटी या कुछ विद्वान् लेखकों के शब्दों को उद्धृत करना सर्वोत्तम होगा बजाय इसके कि हम स्वयं धारा 91 और 92 का निर्वचन करें—

> "लैफरॉय की पुस्तक फेडरल सिस्टम आफ कनाडा" में पृष्ठ 120 पर निम्नलिखित कथन किया गया है—
>
> "किसी डोमीनियन ऐक्ट की विधिमान्यता अवधारित करने में पहले इस प्रश्न को अवधारित किया जाना होता है कि क्या ऐक्ट धारा 92 में प्रगणित तथा प्रान्तों के विधानमण्डलों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत आता है? यदि उनके अन्तर्गत आता है तब आगे यह प्रश्न उठेगा कि क्या ऐक्ट का विषय धारा 91 में प्रगणित विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत भी नहीं आता है और इस प्रकार अब भी वह डोमीनियन पार्लियामेण्ट का नहीं है? लेकिन यदि ऐक्ट धारा 92 के विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता है तो आगे कोई और प्रश्न नहीं रहेगा।"

42. विद्वान् लेखक ने ऊपर वर्णित कथन के समर्थन में प्रिवी काउन्सिल के चार मामले उद्धृत किए हैं। एक मामले [**रस्सल** बनाम **क्वीन** (1)] में प्रिवी काउन्सिल कनाडा टैम्परेन्स ऐक्ट, 1878 की विधिमान्यता पर विचार कर रही थी। इस सम्बन्ध में सर मांटेग्यू ई० स्मिथ ने यह मत व्यक्त किया—

> "विधायी शक्तियों के वितरण के सम्बन्ध में ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की साधारण स्कीम और धारा 91 और 92 के साधारण प्रविषय और प्रभाव पर और उनके आपसी सम्बन्ध पर **सिटीजन्स इन्श्योरेन्स कम्पनी** बनाम **पारसन्स**(2) के मामले में इस बोर्ड द्वारा पूर्णतया विचार किया गया था और टीका-टिप्पणी की गई थी। उस मामले में बतलाए गए अर्थान्वियन के सिद्धान्त के अनुसार पहला प्रश्न यह अवधारित करना है कि क्या अब प्रश्नगत ऐक्ट धारा 92 में प्रगणित तथा प्रान्तों के विधानमण्डलों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत आता है। यदि उनके अन्तर्गत आता है तब आगे यह प्रश्न उठेगा अर्थात् क्या ऐक्ट का विषय धारा 91 में प्रगणित विषयों के वर्गों में किसी वर्ग के अन्तर्गत भी नहीं आता है और इस प्रकार अब भी डोमीनियन पार्लियामेण्ट का नहीं

(1) (1881-82) 7 ए० सी० 836.
(2) 7 ए० सी० 96.

है। लेकिन यदि ऐक्ट धारा 91 के विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता है तो आगे कोई प्रश्न नहीं रहेगा, क्योंकि यह दलील नहीं दी जा सकती, और निस्सन्देह लार्डशिप्स के समक्ष यह दलील नहीं दी गई थी कि यदि ऐक्ट प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट विषयों के वर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता है तो कनाडा की संसद् को 'कनाडा की शान्ति, व्यवस्था और सुशासन के लिए विधियां बनाने' की अपनी साधारण शक्ति के कारण उसे पारित करने का पूर्ण विधायी प्राधिकार प्राप्त नहीं था।"

43. हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ इंग्लैण्ड (तृतीय संस्करण, खण्ड 5, पृष्ठ 498) में नियम इस प्रकार दिया गया है—

"विधान की विधिमान्यता अवधारित करने के लिए जांच करने की साधारण पद्धति यह है कि पहले यह प्रश्न किया जाए कि क्या विषय कानून द्वारा अभिव्यक्त वर्गों के भीतर आता है कि वह प्रान्तों की शक्तियों के अन्तर्गत अनन्यत: है? यदि वह अभिव्यक्त वर्गों में नहीं आता है तो शक्ति अनन्य रूप से संसद् की होती है, किन्तु यदि ऐसा प्रतीत होता हो कि वह उन वर्गों के अन्तर्गत आता है तो भी अनन्य शक्ति संसद् की होती है, यदि वह संसद् के विधायी प्राधिकार के भीतर प्रगणित वर्ग के भीतर भी आता है।"

44. **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर ब्रिटिश कोलम्बिया** (1) में लार्ड टाम्लिन ने कनाडा के संविधान की धारा 91 और 92 के प्रति निर्देश करने के पश्चात् निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"डोमीनियन की पार्लियामेण्ट की अधिकारिता और प्रान्तीय अधिकारिता के बीच संघर्ष के प्रश्न लार्डशिप्स के बोर्ड के समक्ष प्राय: उठे हैं और बोर्ड के विनिश्चयों के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रस्थापनाएं कथित की जाती हैं—

(1) डोमीनियन की पार्लियामेण्ट के विधान का जहां तक वह धारा 91 में अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विधान के विषयों के सम्बन्ध में है वहां तक सर्वोच्च प्राधिकार है यद्यपि वह धारा 92 द्वारा प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट विषयों का अतिक्रमण करता है—देखिए **टेनेण्ट** बनाम **यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया** (2)।

(2) ऐक्ट की धारा 91 द्वारा डोमीनियन की पार्लियामेण्ट पर प्रदत्त विधान की साधारण शक्ति, जो कि अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विषयों पर विधान करने की शक्ति के अनुपूरक के रूप में है, निश्चित रूप से ऐसे विषयों तक सीमित होनी चाहिए जो निश्चित रूप से राष्ट्रीय हित और महत्व के हों और उन्हें धारा 92 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए जो कि प्रान्तीय विधानमण्डल के प्रविषय के अन्तर्गत हैं, जब

---

(1) (1930) ए० सी० III, 118.

(2) (1894) ए० सी० 31.

तक कि इन विषयों को इतना महत्व न मिल गया हो कि उनसे राज्य संस्था पर प्रभाव पड़ता हो—देखिए **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन** (1)।

(3) उन विषयों के लिए उपबन्धित करना डोमीनियन पार्लियामेण्ट की सक्षमता के भीतर है, जो, यद्यपि अन्यथा प्रान्तीय विधानमण्डल की विधायी सक्षमता के भीतर हैं, धारा 91 में अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विधान के विषय पर डोमीनियन की पार्लियामेण्ट द्वारा प्रभावी विधान के आवश्यक रूप से आनुषंगिक हैं—देखिए **अटर्नी जनरल ऑफ ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन** (2) और **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो बनाम अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन** (1)।

(4) कोई ऐसा कार्यक्षेत्र हो सकता है जिसमें प्रान्तीय और डोमीनियन विधान अतिव्याप्त हो, उस दशा में विधान अधिकारातीत नहीं होगा यदि क्षेत्र स्पष्ट है, किन्तु यदि क्षेत्र स्पष्ट नहीं है और दोनों विधान परस्पर मिलते हों, तो डोमीनियन विधान अभिभावी होना चाहिए—देखिए **ग्रैण्ड ट्रंक रेलवे ऑफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल ऑफ कनाडा** (3)।

45. इस कथन का **रेगुलेशन एण्ड कण्ट्रोल ऑफ एयरोनोटिक्स इन कनाडा के मामले** (4) में, **सिल्वर ब्रदर्स लिमिटेड के मामले**(5) **में और कनेडियन पेसिफिक रेलवे कम्पनी** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर ब्रिटिश कोलम्बिया** (6) अनुमोदन किया गया था।

46. यह बात ध्यान देने की है कि दूसरी प्रस्थापना **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर दि डोमिनियन** (1) पर आधारित थी और ऐसे कहा जाता है कि "इन सप्लीमेण्ट" शब्दों का उपयोग प्रिवी काउन्सिल द्वारा पहली बार किया गया था।

47. यह बिल्कुल सच है, जैसा कि श्री पालखीवाला ने कहा है, कि कनाडा के संविधान की धारा 91 और 92 को पढ़ने का एक तरीका यह है कि धारा 91 साधारण शक्तियां प्रदान करती है और उसके बाद कुछ विनिर्दिष्ट शक्तियां प्रदान करती है। **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर दि डोमीनियन**(1) में प्रिवी काउन्सिल ने ऐक्ट के बारे में यही मत प्रकट किए हैं। किन्तु चाहे जो भी निर्वचन हो, प्रिवी काउन्सिल ने 1896 से पूर्व **रस्सल** बनाम **क्वीन** (7) में यही कसौटी अपनाई थी और इस मामले के बाद से लागू की गई थी।

---

(1) (1896) ए० सी० 348.
(2) (1894) ए० सी० 189.
(3) (1907) ए० सी० 65.
(4) (1932) ए० सी० 54.
(5) (1932) ए० सी० 514.
(6) (1950) ए० सी० 122.
(7) (1881-82) 7 ए० सी० 836.

48. विद्वान् काउन्सेल ने इस न्यायालय के और फैडरल न्यायालय के पांच मामले यह दर्शित करने के लिए निर्दिष्ट किए हैं कि कनाडा के मामलों का अवलम्बन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि कनाडा का संविधान भिन्न है। यह सच है कि कनाडा का संविधान कई प्रकार से भिन्न है और कुछ प्रयोजनों के लिए कनाडा के मामलों का अवलम्बन करना भ्रामक होगा। **छोटा भाई जेठा भाई पटेल** बनाम **भारत संघ** (1) में सूची 1 की प्रविष्टि 84 (तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क) और सूची II की प्रविष्टि 60 (वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर) के निर्वचन का प्रश्न उठा था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि कनाडा के जिन मामलों को न्यायालय के समक्ष उद्धृत किया गया है उनसे कोई सहायता नहीं मिलती क्योंकि कनाडा में समानान्तर समस्याएं सदा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कराधान के प्रश्नों से सम्बन्धित होती हैं। हम यह मानते हैं कि प्रविष्टि 84 (तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क) के निर्वचन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कराधान से सम्बन्धित मामलों का अवलम्बन करना भ्रामक होगा।

49. इसी प्रकार सन् 1942 में **मद्रास प्रान्त** बनाम **मैसर्स बोद्दू पायदप्पा**(2) में फैडरल न्यायालय गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की सूची 1 की प्रविष्टि 45 (तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क) और सूची 2 की प्रविष्टि 48 (माल के विक्रय और विज्ञापनों पर कर) के निर्वचन पर विचार कर रहा था। इन विषयों के सम्बन्ध में कनाडा के मामले से सम्भवत: कोई सहायता नहीं मिल सकती है और न ही वे सुसंगत हैं।

50. **मुम्बई राज्य** बनाम **चमारबुगवाला** (3) में इस न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया था कि आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 92 पर अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चयों का तथा आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट और प्रिवी काउन्सिल के विनिश्चयों का उपयोग बड़ी सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए क्योंकि हमारा संविधान भिन्न है और इसमें अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) और अनुच्छेद 302-325 में पर्याप्त सुरक्षाओं का उपबन्ध किया गया है।

51. **अतियावाड़ी टी कम्पनी** बनाम **आसाम राज्य**(4) में इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304 पर विचार किया था। मुख्य न्यायाधिपति सिन्हा ने अपनी ओर से यह मत व्यक्त किया कि "मैंने जानबूझकर अमेरिका या आस्ट्रेलिया जैसे अन्य देशों के विनिश्चयों के प्रति निर्देश या उनका अवलम्बन नहीं किया।"

52. इसके बाद **ऑटोमोबाइल ट्रांस्पोर्ट (राजस्थान)** बनाम **राजस्थान राज्य**(5)

---

(1) (1962) सप्लीमेण्ट 2 एस० सी० आर० 1.

(2) (1942) एफ० सी० आर० 90.

(3) (1957) एफ० सी० आर० 874, 918.

(4) (1961) 1 एस० सी० आर० 809, 838.

(5) (1963) 1 एस० सी० आर० 491, 510.

में धारा 92 के अधीन आस्ट्रेलिया के विनिश्चयों के प्रति निर्देश करते हुए यह मत व्यक्त किया गया—

"अन्य फैडरल संविधानों में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता की समस्या पर किस प्रकार विचार किया जाता है यह दर्शित करने के लिए वे विनिश्चय कितने ही मूल्यवान क्यों न हों, हमारे संविधान के उपबन्धों का निर्वचन उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुसार किया जाना चाहिए जिसके अनुसार हमारा संविधान बनाया गया था; उन समस्याओं की पृष्ठभूमि के अनुसार जिन्हें संविधान के निर्माताओं ने उन भारतीय लोगों की प्रतिभा के अनुसार हल करने का प्रयत्न किया था जिनका संविधान के निर्माता संविधान सभा में प्रतिनिधित्व करते हैं।"

53. इसके प्रतिकूल **सुब्रामण्यन चेट्टियार** बनाम **मुट्टूस्वामी गौण्डन** (1) में गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 100 का, जो संविधान की धारा 246 के तत्समान है, निर्वचन करते हुए मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने पृष्ठ 200 पर यह मत व्यक्त किया—

"ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट, 1867 में सदृश उपबन्ध अन्तर्विष्ट है और इस बात पर तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता कि संसद् के ध्यान में वे उपबन्ध थे जब कि उसने पश्चात्वर्ती ऐक्ट अधिनियमित किया।"

इसके पश्चात् मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की धारा 91 और 92 के प्रति निर्देश किया और पृष्ठ 201 पर यह मत व्यक्त किया—

"जैसा कि जुडीशियल कमेटी द्वारा निर्वचन किया गया है, ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट भारतीय अधिनियम के बिल्कुल सदृश है, यहां तक कि पश्चात्वर्ती की धारा 100 (1) में अध्यारोही उपबन्ध भी वैसे ही है :

"अर्थान्वयन का नियम यह है कि धारा 92 के शीर्षकों की साधारण भाषा धारा 91 में विशिष्ट अभिव्यक्तियों से मेल खाती है और धारा 91 की अभिव्यक्तियां असंदिग्ध हैं। ["**ग्रेट वेस्ट सैड्डलरी कम्पनी** बनाम किंग (2) में लार्ड हैल्डेन के अनुसार] ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की इन दो धाराओं के निर्वचन के लिए विनिश्चयों की लम्बी श्रृंखला में जुडीशियल कमेटी द्वारा अधिकथित सिद्धान्त को गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के वैसे ही उपबन्धों के निर्वचन के लिए मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।"

54. यह सच है कि मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर यह अवधारित करने के लिए कि क्या यह इस सूची या उस सूची के विषयों के सम्बन्ध में विधान है, 'सार' तथा "विधान की सही प्रकृति और स्वरूप" के प्रश्नों पर विचार कर रहे थे किन्तु उनके निर्णय से कम से कम इतना स्पष्ट है कि जहां उपबन्ध एक समान हों वहां जुडीशियल कमेटी द्वारा अधिकथित सिद्धान्तों को मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

---

(1) (1940) एफ० सी० आर० 188.

(2) (1921) 2 ए० सी० 91, 116.

इसी प्रकार न्यायाधिपति वरदायारियर ने पृष्ठ 1235 पर यह मत व्यक्त किया—

"मुझे यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि पटना वाले मामले में जो यह उपधारणा की गई है कि कांस्टिट्यूशन ऐक्ट के धारा 100 की स्कीम ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की धारा 91 और 92 से बुनियादी तौर से भिन्न है, वह अवांछनीय है। **सिटीजन्स इन्श्योरेन्स कम्पनी ऑफ कनाडा** बनाम **पारसन्स**(1) से आरम्भ होने वाले विनिश्चयों की लम्बी परम्परा में कनाडा के संविधान के इन उपबन्धों का इस रीति से निर्वचन किया गया है कि उसमें गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 100 में अपनाई गई स्कीम लगभग आ जाती है। ××× सूची 2 में प्रगणित विषयों के सम्बन्ध में और सूची 1 में विनिर्दिष्ट विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय विधानमण्डलों को इण्डियन कांस्टिट्यूशन ऐक्ट के अधीन स्थिति सारतः वही है जो ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की धारा 92 के अधीन प्रान्तीय विधानमण्डलों की शक्तियों के सम्बन्ध में ऊपर कथित है। विनिश्चयों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि कनाडा के मामलों में अपनाए गए निर्वचनों के नियम युक्तियुक्तः और सामान्य ज्ञान से तथा विधायी शक्तियों के वितरण की किसी पद्धति में विषयों की अनिवार्य अतिव्याप्ति से उत्पन्न होने वाले प्रतिविरोधों का समाधानपूर्वक हल करने की आवश्यकता के कारण बनाए गए थे। उन नियमों को फैडरल संविधान की किसी विशेष पद्धति तक सीमित नहीं रखना चाहिए यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि **कालाधर** बनाम **लिन** (2) में लार्ड एटकिन ने गवर्नमेण्ट ऑफ आयरलैण्ड ऐक्ट के अधीन—जिसमें फैडरल पद्धति बिल्कुल ही नहीं थी—उठने वाले प्रश्न पर विचार करते हुए "तत्व और सार" (पिथ एण्ड सबस्टैन्स)" नियम को लागू किया था और **शैनान** बनाम **लोअर मैनलैण्ड डेरी प्रोडक्ट्स बोर्ड** (3) में कनाडा के मामले पर विचार करते हुए उन्होंने आयरलैण्ड के मामले में प्रगणित सिद्धान्तों को उस निर्णय में अन्तर्विष्ट किया।"

55. यह कहा गया है कि यदि हमने जांच करने की इस पद्धति को अपनाया तो हम अपने संविधान की संघीय संरचना को नष्ट कर देंगे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस कसौटी को सम्भवतः इस न्यायालय ने **दानकर अधिकारी** बनाम **नज़ारथ** (4) में लागू किया गया था। उस मामले में मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने दानकर के प्रश्न पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया—

"अतः दानकर अधिनियम का सार या तो राज्य सूची की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आता है या नहीं आता है। यदि यह उस प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है तब संसद् को अवशिष्ट शक्तियों के अधीन भी कर का उद्ग्रहण करने की कोई शक्ति

---

(1) 7 ए० सी० 96.

(2) (1937) ए० सी० 863, 869.

(3) (1938) ए० सी० 708,719-720.

(4) (1971) 1 एस० सी० आर० 195, 200.

नहीं होगी। यदि यह उस प्रविष्टि के अन्तर्गत नहीं आता है तो निस्सन्देह संसद् को अनुच्छेद 248 के अधीन और संघ सूची की प्रविष्टि 97 के अधीन वह शक्ति प्राप्त है।"

56. जो भी हो, हमें ऐसा नहीं प्रतीत होता कि जांच करने की इस पद्धति को अपनाने से हमारे संविधान की संघीय संरचना कैसे नष्ट हो जाएगी। राज्य विधानमण्डलों को सूची 2 की प्रविष्टियों के सम्बन्ध में और सूची 3 के विषयों पर संसद् द्वारा विधान बनाने के अध्यधीन विधियां पारित करने के लिए पूर्ण विधायी प्राधिकार प्राप्त है।

57. यह भी कहा गया है कि यदि संविधान-निर्माताओं का यही आशय रहता तो वे सूची 1 को बनाते ही नहीं। यह वही प्रश्न है जिसे सरदार हुकम सिंह ने तथा अन्य व्यक्तियों ने ऊपर निर्दिष्ट डिबेटों में उठाया था और जिसका उत्तर डा० अम्बेडकर द्वारा दिया गया था। ऊपर उद्धृत भाषण में डा० अम्बेडकर ने जो कुछ भी कहा था उसके अलावा सूची 1 में विनिर्दिष्ट मदों को शामिल करने से कोई गुणागुण और विधिक प्रभाव है क्योंकि जब संविधान में तीन सूचियां हैं तब सूची 2 का सूची 1 और 3 के प्रकाश में अर्थान्वियन करना आसान है। यदि सूची 1 न होती तो सम्भवतः सूची 2 की बहुत सी मदों का अधिक व्यापक रूप से निर्वचन किया जाता है, जैसा कि प्रस्तुत स्कीम के अधीन किया जाता है। जो भी हो, हमारे सामने तीन सूचियां हैं और एक अवशिष्ट शक्ति है और इसलिए हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस संदर्भ में यदि केन्द्रीय अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह संसद् की विधायी सक्षमता के बाहर है तो यह जांच करना पर्याप्त है कि क्या वह सूची 2 में प्रगणित विषयों या करों के सम्बन्ध में विधि है। यदि वह नहीं है तो आगे कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

58. इस निष्कर्ष की दृष्टि से अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे अर्थात् क्या आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधि है या क्या वह सूची 2 की प्रविष्टि 49 में वर्णित कोई कर अधिरोपित करता है? इस विषय पर हमारे समक्ष इस न्यायालय के तीन विनिश्चय हैं। यद्यपि इन विनिश्चयों को चुनौती दी गई थी फिर भी हमारी यह राय है कि उनमें सूची 2 की प्रविष्टि 49 का निर्वचन ठीक तरह से किया गया है।

59. **सुधीर चन्द्र नॉन बनाम धन कर आफिसर** ([1]) में इस न्यायालय ने धनकर अधिनियम, 1957 की, जैसा कि वह मूलतः था, विधिमान्यता पर विचार किया था। इस न्यायालय ने इस धारणा पर कार्यवाही की थी कि धनकर अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किया गया था। न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि "चूंकि 'शुद्ध धन' के अन्तर्गत निर्धारिती की कृषि-भिन्न भूमियां और भवन आते हैं तथा भूमियों और भवनों पर कर का उद्ग्रहण करने की शक्ति का सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 द्वारा राज्य विधानमण्डलों के लिए आरक्षण किया गया है, अतः संसद् ऐसी आस्तियों के जिनके अन्तर्गत कृषि-भिन्न भूमियां और भवन

([1]) (1968) 2 उम० नि० प० 794, 798=(1969) 1 एस० सी० आर० 108, 110.

आते हैं, मूलधन मूल्य पर धनकर का उद्ग्रहण करने के लिए विधान बनाने के लिए सक्षम नहीं हैं।"

इस दलील को नामंजूर करते हुए न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

"सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा जो कर अधिरोपित है वह सीधे भूमियों और भवनों पर लगने वाला कर नहीं है। यह तो वह कर है जो मूल्यांकन तारीख को व्यष्टियों और कम्पनियों की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर अधिरोपित है। यह कर निर्धारिती की आस्तियों के संघटकों पर अधिरोपित नहीं किया जाता है। यह तो उन कुल आस्तियों पर अधिरोपित किया जाता है जो निर्धारिती के स्वामित्व में होती है तथा शुद्ध धन का अवधारण करने में न केवल उन विल्लंगमों को, जो आस्तियों की किसी मद के मद्धे विनिर्दिष्टतया प्रभारित हैं बल्कि अपने ऋण अदा करने और अपनी विधिपूर्ण बाध्यताओं के उन्मोचन के लिए निर्धारिती के साधारण दायित्व को भी लेखे में लेना पड़ता है। X X X। इसके बजाय, सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 में तो भूमियों और भवनों या दोनों पर यूनिटों के रूप में कर का उद्ग्रहण किया जाना अनुध्यात है। इस प्रविष्टि का सम्बन्ध सामान्यतया उन भूमियों या भवनों के, जिन पर कि कर लगाया जाता है, यूनिटों में हित या स्वामित्व के विभाजन से नहीं है। भूमियों और भवनों पर कर तो सीधे भूमियों और भवनों पर ही अधिरोपित किया जाता है और ऐसे कर का उनसे एक निश्चित सम्बन्ध होता है। आस्तियों के मूलधन मूल्य पर लगे कर का इन भूमियों और भवनों से कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता जो निर्धारिती की कुल आस्तियों के कोई संघटक हों। सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन वाली शक्ति के प्रयोग में विधान बना कर कर के बारे में यह अनुध्यात किया जाता है कि वह आस्तियों के मूल्य पर उद्गृहीत किया गया है। सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर का उद्ग्रहण करने के प्रयोजनार्थ राज्य विधान-मण्डल कर के आपतन का अवधारण करने के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपना सकता है। किन्तु कर दायित्व के अवधारण के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या पूंजी मूल्य के अपनाए जाने से हमारी राय में उक्त दोनों प्रविष्टियों के अधीन विधान बनाने के क्षेत्र अतिव्यापी नहीं हो जाएंगे।"

60. प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क दिया गया था कि **नगर भूमि कर सहायक आयुक्त, मद्रास** बनाम **बकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड**(1) में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि भूमि और भवनों के मूलधन मूल्य पर कर सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन अधिरोपित किया जा सकता है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह उस विनिश्चय का सही पाठ नहीं है। पृष्ठ 158 के निम्नलिखित वाक्य का अवलम्ब किया जाता है:—

"इसलिए यह मानने का कोई कारण हमें नहीं दिखाई देता कि सूची 2 की

(1) (1970) 2 उम० नि० प० 141 158=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.

प्रविष्टि 86 और 87, सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन भूमि और भवनों के मूलधन मूल्य पर कर लगाने से राज्य विधानमण्डल को प्रवारित करती है ।"

ऊपर व्यक्त किए गए मतों को उस बात के सन्दर्भ में समझना होगा कि तत्पश्चात् क्या कही गई थी । न्यायाधिपति रामस्वामी ने उस निर्णय में आगे निम्नलिखित मत व्यक्त किए थे—

"दोनों प्रविष्टियों के अधीन कराधान के आधार बिल्कुल अलग-अलग हैं। जहां तक सूची 1 की प्रविष्टि 86 का प्रश्न है कराधान का आधार आस्ति का मूलधन मूल्य है । मूल्यांकन की तारीख को व्यक्तियों और कम्पनियों की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर यह कर प्रत्यक्ष रूप से लगाया जाने वाला कर नहीं है । यह कर निर्धारिती की आस्तियों के धारकों पर अधिरोपित नहीं है । प्रविष्टि 86 के अधीन वाला कर संकलन के सिद्धान्त पर आधृत है और सभी आस्तियों के समग्र मूल्य पर अधिरोपित किया जाता है । यह कर उन कुल आस्तियों पर अधिरोपित किया जाता है जो निर्धारिती के स्वामित्वाधीन हैं, किन्तु शुद्ध धन अवधारित करने में न केवल आस्ति की किसी मद से विनिर्दिष्टत: भारित विल्लंगम् वरन् अपने ऋणों का संदाय तथा अपनी विधिपूर्ण बाध्यताओं का निर्वहन करने के सम्बन्ध में निर्धारिती का सामान्य दायित्व भी हिसाब में लिया जाना है। × × × । किन्तु सूची 2 की प्रविष्टि 49 में कर का उद्ग्रहण भूमि और भवनों पर अथवा इकाई के रूप में दोनों पर परिकल्पित है । जिन भूमियों या भवनों पर कर लगाया जाता है उनकी इकाइयों में हित या स्वामित्व के विभाजन के साथ उसका कोई सरोकार नहीं है । भूमि और भवनों पर कर भूमियों और भवनों पर सीधे-सीधे अधिरोपित किया जाता है और उनके साथ उसका निश्चित सम्बन्ध होता है । आस्ति के मूलधन मूल्य पर कर का उन भूमियों और भवनों के साथ, जो निर्धारिती की कुल आस्तियों का घटक हो सकते हैं, कोई परिनिश्चित सम्बन्ध नहीं होता है । सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए विधान से यह समझा जाता है कि कर का उद्ग्रहण आस्ति के मूल्य पर किया गया है । सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए राज्य विधानमण्डल कर का भार अवधारित करने के प्रयोजन के लिए भूमि और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपना सकता है । किन्तु कर का दायित्व अवधारित करने के लिए भूमि और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपनाने से दोनों प्रविष्टियों के अधीन विधान के क्षेत्र अतिव्यापी नहीं हो जाएंगे । **दोनों कर अपनी मूलभूत कल्पना में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं और अलग-अलग विषय क्षेत्रों के अन्तर्गत आते हैं ।**"

61. **दानकर अधिकारी** बनाम **डी० एच० नजारथ**[1] में इस न्यायालय ने दानकर अधिनियम, 1958 की विधिमान्यता पर विचार करते हुए सूची 2 की प्रविष्टि 49 के

(1) (1971) 1 एस० सी० आर० 195, 200.

अधीन विधान के प्रविषय पर विचार किया था। मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने यह मत व्यक्त किया था—

"यह सम्भव नहीं है कि राज्यों के पक्ष में कृषि भूमि का स्पष्ट रूप से विभाजन समझा जाए यद्यपि आशय यह है कि भूमि को उसके अत्यधिक पहलुओं सहित राज्य सूची में डाला जाए। किन्तु वह प्रविष्टि कितनी भी व्यापक क्यों न हो वह अभिव्यक्त रूप से अवर्णित किसी कर को प्राधिकृत नहीं कर सकती है।"

न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया—

"चूंकि राज्य सूची की प्रविष्टि 49 भूमियों और भवनों के साधारण स्वामित्व के कारण प्रत्यक्षत: उद्गृहीत कर अनुध्यात है इसलिए इसके अन्तर्गत संसद् द्वारा यथा उद्गृहीत दान कर नहीं आ सकता।"

62. सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन किसी कर की अध्यपेक्षाएं संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(1) यह इकाइयों पर अर्थात् भूमियों और भवनों पर पृथक्-पृथक् इकाइयों के रूप में कर होना चाहिए।

(2) कर साकल्य पर कर नहीं हो सकता अर्थात् यह सभी भूमियों और भवनों के मूल्य पर संयुक्त कर नहीं है।

(3) कर भवन या भूमि में हित के विभाजन से सम्बन्धित नहीं है। दूसरे शब्दों में इसका इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि क्या वह किसी एक व्यक्ति के स्वामित्व या अधिभोग में है या दो या अधिक व्यक्तियों के स्वामित्व या अधिभोग में है।

63. संक्षेपत: सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर व्यक्तिगत कर नहीं है बल्कि वह सम्पत्ति पर कर है।

64. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय ने निश्चित रूप से यह अभिनिर्धारित किया था और हम उस निष्कर्ष से सहमत हैं कि धन कर अधिनियम के अधीन, जैसे कि वह मूलत: था, अधिरोपित धन कर की प्रकृति सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर की प्रकृति से भिन्न है और वह इस प्रविष्टि के अन्तर्गत नहीं आता है।

65. 'शुद्ध धन कर' और 'सम्पत्ति पर कर' के बीच जो अन्तर है वह निम्नलिखित उद्धरणों में स्पष्ट किया गया है और वह इस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन करता है।

66. फर्ड एण्ड ओल्डमैन द्वारा लिखित पुस्तक टैक्सेशन इन डेवेल्पिंग कण्ट्रीज के पाठों से धन कर का पहलू पृष्ठ 281 पर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

*" 'शुद्ध धन कर' पद की प्राय: इस प्रकार परिभाषा की जाती है कि वह किसी विशिष्ट करदाता—विशेषतया व्यष्टियों की सभी आस्तियों के शुद्ध मूल्य

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"The term 'net wealth tax' is usually defined as a tax annually imposed on the net value of all assets less liabilities of particular

पर वार्षिक रूप से अधिरोपित कर है जिसमें से उसके दायित्व घटा दिए जाते हैं। यह परिभाषा शुद्ध धन कर से शुद्ध धन के कराधान के अन्य प्रकारों से, जैसे कि मृत्यु शुल्क और पूंजी उद्ग्रहण से भिन्नता बताती है। पूर्ववर्ती कर केवल विरल अन्तरालों पर पीढ़ी में एक बार—अधिरोपित किए जाते हैं जब कि पश्चात्वर्ती एक बार का प्रभार है, जो प्राय: युद्धकाल के राष्ट्रीय ऋण का मोचन करने के प्राथमिक प्रयोजन के लिए होता है। शुद्ध धन कर वस्तुत: मूल धन के वार्षिक आगमों पर कर लगाने के लिए आशयित है न कि स्वयं मूलधन पर, जैसा कि मृत्यु शुल्क या पूंजी उद्ग्रहण है, यद्यपि यह मूलधन के मूल्य पर उद्गृहीत किया जाता है। चूंकि इससे शुद्ध धन पर कर लगाया जाता है, यह सम्पत्ति—प्राथमिक रूप से वास्तविक सम्पत्ति—के सकल मूल्य पर अधिरोपित सम्पत्ति करों से भी बहुत से देशों में भिन्न-भिन्न होता है। शुद्ध धनकर लगाने में सभी परादेय दायित्वों और व्यक्तिगत छूटों की कटौती करके तथा अन्य युक्तियों के माध्यम से करदाता की कराधेय हैसियत को ध्यान में रखा जाता है जब कि सम्पत्ति कर लगाने में साधारणतया इन बातों को ध्यान में नहीं रखा जाता। अत: यह समझा जाता है कि शुद्ध धन कर करदाता के वैयक्तित्व पर लगाया जाता है जबकि सम्पत्ति कर के बारे में प्राय: यह समझा जाता है कि वह किसी वस्तु पर—स्वयं सम्पत्ति पर अधिरोपित किया जाता है।"

67. हारवर्ड लॉ स्कूल वर्ल्ड टैक्स सीरीज़—टैक्सेशन इन कोलम्बिया—में शुद्ध धन कर की परिभाषा पृष्ठ 451 पर इस प्रकार दी गई है—

*"साधारण नियम के तौर पर करदाता द्वारा देय सभी ऋण चाहे वे

---

tax-payers--especially individuals. This definition distinguishes the net wealth-tax from other types of taxation of net wealth, such as death duties and a capital levy; the former are imposed only at infrequent intervals—once a generation—while the latter is a one-time charge, usually with the primary purpose of redeeming a wartime national debt. The net wealth-tax is really intended to tax the annual yield of capital rather than the principal itself as do death duties of a capital levy, even though it is levived on the values of the principal. Since it taxes net wealth, it also differs from property taxes imposed on the gross value of the property—primarily real property—in a number of countries. The net wealth-tax gives consideration to the tax payers's taxable capacity through the deduction of all outstanding liabilities and personal exemptions as well as through other devices, while the property tax generally does not take these factors into account. The net wealth tax is therefore deemed to be imposed on the person of the taxpayer, while the property tax is often deemed to be imposed on an object—the property itself."

* "As a general rule, all debts owed by a taxpayer, whether to

निवासियों या अनिवासियों को देय हों, कटौती योग्य होते हैं, यदि उनका अस्तित्व विधिक अपेक्षाओं के अनुरूप सिद्ध कर दिया जाता है। कसौटी योग्य होने की प्राय: कसौटी, जैसे कि डिवीज़न आफ नेशनल टैक्सेस द्वारा लागू की गई है, यह है कि क्या कोई वास्तविक, प्रवर्तनीय विधिक बाध्यता है या नहीं जिसकी रकम कर वर्ष के 31 दिसम्बर को नियत या संगणनीय होती है।"

68. हारवर्ड लॉ स्कूल वर्ल्ड टैक्स सीरीज़—टैक्सेशन इन स्वीडन—के अनुसार यह कर बहुत अरसे से स्वीडन में उद्गृहीत किया जाता है। अब यह सन् 1947 में अधिनियमित विधि द्वारा नियमित किया जाता है—'कराधेय धन' की परिभाषा पृष्ठ 625 पर इस प्रकार दी गई है—

*"कराधेय धन में करदाता की आस्तियों का मूलधन मूल्य अन्तर्बिष्ट होता है क्योंकि उनकी विधि में परिभाषा इस विस्तार तक की गई है कि यह मूल्य उसके ऋणों के मूलधन मूल्य से बढ़ जाता है।"

69. हारवर्ड लॉ स्कूल वर्ल्ड टैक्स सीरीज़—टैक्सेशन इन दि फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी—में पृष्ठ 152 पर यह कथित किया गया है कि 'मूलधन पर कर' जो इस अध्याय में संक्षेप में दिए गए हैं इक्वेलाइजेशन ऑफ बर्डन्स लॉ के अधीन वे शुद्ध मूल्य कर, वास्तविक सम्पत्ति कर और पूंजी उद्ग्रहण हैं। आगे यह कथित किया गया है—

** "मूलधन पर कुछ करों के बारे में यह समझा जाता है कि वे करदाता के वैयक्तित्व पर अधिरोपित किए जाते हैं जब कि अन्य करों के बारे में यह समझा जाता है कि वे किसी वस्तु पर अधिरोपित किए जाते हैं। पूर्ववर्ती के उदाहरण इक्वेलाइजेशन ऑफ बर्डन्स लॉ के अधीन शुद्ध मूल्य कर और पूंजी उद्ग्रहण है जब कि वास्तविक सम्पत्ति कर और कारबार पूंजी पर व्यापार कर पश्चात्वर्ती कोटि में वर्गीकृत हैं। इस अन्तर का मुख्य महत्व यह है कि प्रथम ग्रुप में आने वाले

---

residents or to non-residents, are deductible if their existence is established in conformity with the legal requirements. The usual test of deductibility as applied by the Division of National Taxes, is whether or not there is an actual, enforceable legal obligation, the amount of which is fixed or computable as on 31 December of the tax years."

* "Taxable wealth consists of the capital value of the taxpayer's assets, as those are defined in the law, to the extent that this value exceeds the capital value of his debts."

**"Some of the taxes on capital are deemed to be imposed on the person of the taxpayer while others are deemed to be imposed on an object. Examples of the former are the net worth tax and the capital levy under the Equalization of Burdens Law, while the real property tax and the trade tax on business capital are classified in the latter category. The main importance of this distinction is that

1971(10) eILR(PAT) SC 1

करों में यह अनुमान लगाया जाता है कि करदाता का स्वतन्त्र विधिक अर्थात् व्यष्टि के रूप में या विधि सत्ता के रूप में (विधिक व्यक्ति के रूप में) अस्तित्व है जब कि दूसरे ग्रुप में आने वाले करों में स्वयं कराधेय वस्तु के बारे में यह समझा जाता है कि वह अपने स्वामी के अलावा कर के लिए दायी है जिससे कि करदाता भागीदारी, सिविल विधि का संगम या पृथक विधिक अस्तित्व के बिना व्यक्तियों का कोई अन्य समुच्चय हो सकता है। पहले प्रकार के करों में करदाता के संदाय की योग्यता को ध्यान में रखा जाता है जबकि दूसरे प्रकार के करों में केवल कराधेय वस्तु के मूल्य पर जैसे कि कारबार पूंजी पर व्यापार कर की दशा में कारबार की पूंजी पर या वास्तविक सम्पत्ति कर की दशा में वास्तविक सम्पत्ति के निर्धारित मूल्य पर विचार किया जाता है।"

70. हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके ठीक किया है कि आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विधि नहीं है और सूची 2 की प्रविष्टि 49 में वर्णित कोई कर अधिरोपित नहीं करता है। यदि ऐसा है तब विधान या तो सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन या स्वयं सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन विधिमान्य है।

71. यद्यपि हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 में वर्णित कोई कर अधिरोपित नहीं करता है तथापि हम यह चेतावनी देना चाहेंगे कि यदि केन्द्रीय अधिनियम का, चाहे उसे धन कर अधिनियम कहा जाता हो या न कहा जाता हो, वास्तविक प्रभाव सूची 1 की प्रविष्टि 49 में वर्णित कर अधिरोपित करना है तो कर राज्य विधानमण्डलों के अधिकार-क्षेत्र पर अतिक्रमण करने वाला होने के कारण अविधिमान्य हो सकता है।

72. इस सम्बन्ध में जुडीशियल कमेटी के निम्नलिखित शब्दों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो** [1] में

---

taxes in the first group presuppose a taxpayer with independent legal existence, that is, an individual or a legal entity (juridical person), while in the case of taxes in the second group, the taxable object itself is deemed liable for the tax, in addition to its owner, so that the taxpayer can be partnership, association of the civil law, or other combination of persons without separate legal existence. Taxes of the first type give consideration to the taxpayer's ablility to pay, while those of the second type consider merely the value of the taxable object, such as the capital of a business, in the case of the trade tax on business, capital, or the assessed value of real property, in the case of the real property tax."

---

(1) (1937) ए० सी० 355, 367.

जुडीशियल कमेटी ने यह मत व्यक्त किया—

"दूसरे शब्दों में डोमीनियन विधान चाहे वह डोमीनियन सम्पत्ति के सम्बन्ध में है तो भी इस प्रकार विरचित किया जा सकता है कि उससे प्रान्त के सिविल अधिकारों पर आक्रमण होता हो या विषयों के ऐसे वर्गों में हस्तक्षेप करता हो जो प्रान्तीय सक्षमता के लिए आरक्षित हैं। यह आवश्यक है कि यह आभासी युक्ति या अपदेश होना चाहिए। यदि विधान के सही दृष्टिकोण से यह पाया जाए कि वस्तुत: सार में विधान प्रान्त के भीतर विधिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है या विषयों के अन्य वर्गों के सम्बन्ध में अन्यथा प्रान्तीय क्षेत्र पर हस्तक्षेप करता है तो विधान अविधिमान्य होगा। इससे अन्यथा अभिनिर्धारित करने पर डोमीनियन को प्रान्तीय अधिकार क्षेत्र पर आसानी से कब्ज़ा पाने का मौका मिल जाएगा।"

73. **अटर्नी जनरल फॉर अलबर्टा** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा** (1) में जुडीशियल कमेटी ने यह मत व्यक्त किया—

"न तो डोमीनियन और न ही प्रान्त आवरण या अपदेश के अधीन या स्वयं अपनी शक्तियों को प्रयोग के रूप में उस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए सक्षम नहीं है जो उसकी शक्तियों के बाहर है और जो दूसरे की अनन्य शक्तियों पर अतिचार करता है—**अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरियो बनाम रेसीप्रोकल इन्श्योरेन्स**(2) **इन्श्योरेन्स ऐक्ट ऑफ कनाडा का मामला** (3)। इन मामलों में भी जिन विषयों पर न्यायालय न्यायिक ध्यान देगा उन्हें और किसी मामले में अन्य साक्ष्य को भी, जो उसके लिए मंगावाया जाता है, ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह बात याद रखनी चाहिए कि अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन जहां तक कि वह उसके निबन्धनों से स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं होता और इसका अधिसम्भाव्य प्रभाव अमूर्त सत्ता अर्थात् विधानमण्डल जैसा है। साधारणतया व्यक्तियों के भाषणों का बहुत कम साक्ष्यिक मूल्य होगा।"

74. यद्यपि इस प्रश्न का विनिश्चय करना आवश्यक नहीं है कि क्या आक्षेपित अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है या केवल सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है क्योंकि हमारे कुछ बन्धुओं का यह विचार है कि मूल धनकर अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है तथापि हम उस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सही शुद्ध धनकर और ऐसे कर के बीच, जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन उद्गृहीत किया जा सकता है, अन्तर है। सूची 1 की प्रविष्टि 86 के सम्बन्ध में विधान करते समय संसद् के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह आस्तियों का मूलधन मूल्य अभिनिश्चित करते समय ऋणों की कटौती के लिए उपबन्ध करे। इसी प्रकार राज्य विधानमण्डलों के लिए

(1) (1939) ए० सी० 117, 130.
(2) (1924) ए० सी० 328, 342.
(3) (1932) ए० सी० 41.

यह आवश्यक नहीं है कि वे सूची 2 की प्रविष्टि 49 के सम्बन्ध में विचार करते समय ऋणों की कटौती के लिए उपबन्ध करें। उदाहरणार्थ राज्य विधानमण्डल को, सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर उद्गृहीत करते समय सम्पत्ति के स्वामी द्वारा दिए जाने वाले ऋणों की कटौती के लिए उपबन्ध करने की आवश्यकता नहीं है हमें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रविष्टि का दूसरा भाग अर्थात् सूची 1 की प्रविष्टि 86 में 'समवायों के मूल धन पर कर' से भी यह संकेत मिलता है कि इस प्रविष्टि का सम्बन्ध भी निश्चित रूप से शुद्ध धन के कराधान से नहीं है क्योंकि किसी कम्पनी का मूलधन एक अर्थ में कम्पनी का दायित्व है कि उसकी आस्ति। यदि उसे आस्ति मान भी लिया जाए तो भी प्रविष्टि में कोई ऐसी बात नहीं है जो संसद् को इस बात के लिए विवश करती हो कि ऋणों की कटौती के लिए उपबन्ध किया जाए। यह भी देखा जाएगा कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 केवल व्यष्टियों और कम्पनियों के सम्बन्ध में है किन्तु शुद्ध धनकर न केवल व्यष्टियों पर बल्कि अन्य सत्ताओं और संगमों पर भी उद्गृहीत किया जा सकता है। यह सच है कि सूची 1 प्रविष्टि 86 के अधीन समुच्चयन आवश्यक है क्योंकि वह किसी व्यष्टि की आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर है किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि संसद् किसी व्यष्टि या किसी कम्पनी का आस्तियों का मूल धन मूल्य अवधारित करने के लिए ऋणों की कटौती के लिए उपबन्ध करने के लिए बाध्य है। अत: हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण आक्षेपित अधिनियम स्पष्टतया सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है। हम यह बता देना चाहते हैं कि इस न्यायालय ने यह कभी अभिनिर्धारित नहीं किया है कि मूल धनकर अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। यह तो केवल धारणा की गई थी कि मूल धनकर अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है और उस धारणा के आधार पर इस प्रविष्टि का विश्लेषण किया गया था और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के साथ वैषम्य दिखाया गया है। जो भी हो स्पष्ट रूप से हमारी यह राय है कि आक्षेपित विधान का कोई भी भाग सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता है।

75. किन्तु यह धारणा करते हुए कि धनकर अधिनियम के, जैसे कि वह मूलत: अधिनियमित किया गया था, बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाए कि वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन विधान है, संविधान में कोई ऐसी बात नहीं है जो संसद् को सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन अपनी शक्तियों को सूची 1 की प्रविष्टि 96 के अधीन अपनी शक्तियों से मिलाने से रोक सके। हम कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जानते हैं जो संसद् को सूची 1 की विनिर्दिष्ट प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 के अधीन शक्तियों का अवलम्बन लेने से तथा सूची 1 की प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 के अधीन शक्तियों को और उस प्रयोजन के लिए समवर्ती सूची की प्रविष्टियों के अधीन शक्तियों को अनुपूरित करने के लिए वर्जित करता हो।

76. **सुब्रामनियन चेट्टियार बनाम मुत्तुस्वामी** (1) में मुख्य न्यायाधिपति गौण्डन ग्वायर ने मद्रास एग्रीकलचरिस्ट्स रिलीफ ऐक्ट, 1938 की विधिमान्यता पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया—

"यह कि अधिनियम के उपबन्ध, जो अपीलार्थी द्वारा प्राप्त डिक्री को लागू

(1) (1940) एफ० सी० आर० 188, 203.

होने के लिए, मद्रास विधानमण्डल की अधिनियमित करने की सक्षमता के भीतर थे, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें कोई सन्देह नहीं है। वे सूची 3 की प्रविष्टि सं० 4 और सं० 15, सम्भवतः सूची 2 की प्रविष्टि सं० 2 के निर्देश द्वारा न्यायोचित हो सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि अन्य नहीं हो सकते किन्तु इतना कह देना ही पर्याप्त होगा।"

77. **मुम्बई राज्य** बनाम **नरोथम दास जेठाभाई** (1) में न्यायाधिपति पतञ्जली शास्त्री और दास ने, जैसे कि वे उस समय थे, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सूची 2 की मद 1 और 2, दोनों का बॉम्बे सिटी सिविल कोर्ट ऐक्ट, 1948 को कायम रखने के लिए अवलम्ब लिया।

78. यह दलील दी गई थी कि अवशिष्ट शक्तियों का मामला भिन्न है किन्तु सिद्धान्ततः हमें कोई अन्तर दिखाई नहीं देता है। अवशिष्ट शक्ति वैसी ही शक्ति है जैसी कि विनिर्दिष्ट मद के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 246 के अधीन प्रदत्त शक्ति है।

79. **रेगूलेशन एण्ड कण्ट्रोल ऑफ एयरोनॉटिक्स इन कनाडा के मामले में**(2) में प्रिवी काउन्सिल ने धारा 91 में विनिर्दिष्ट मदों के अधीन शक्तियों को अवशिष्ट शक्तियों से अनुपूरित करने के पश्चात् संसदीय कानून की विधिमान्यता को कायम रखा। प्रिवी काउन्सिल ने यह मत व्यक्त किया—

"संक्षेप में (क) धारा 132 के निबन्धनों को; (ख) ऐसे अभिसमय के निबन्धनों को, जिसके अन्तर्गत विमान चालन से सम्बन्धित लगभग हर बोधगम्य विषय आ जाता है; और (ग) इस तथ्य को धारा 91, मद 2, 5 और 7 के आधार पर विमान चालन के सम्बन्ध में विधायी शक्तियां कनाडा की संसद् के पास होती हैं, ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रकट होगा कि सारतः विमान चालन के सम्बन्ध में विधान का सम्पूर्ण क्षेत्र डोमीनियन का है। ऐसा हो सकता है कि उस क्षेत्र का थोड़ा सा भाग, जो ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट में विनिर्दिष्ट शब्दों के आधार पर नहीं, प्रान्तों में विनिर्दिष्ट शब्दों द्वारा निहित किया जा सकता है। **उस थोड़े से भाग के सम्बन्ध में बोर्ड को ऐसा प्रतीत होता है कि वह निश्चित रूप से कनाडा की शक्ति, व्यवस्था और सुशासन के लिए विधियां बनाने की शक्ति के अधीन डोमीनियन का है।** इसके अतिरिक्त लार्डशिप्स पर इन तथ्यों का प्रभाव पड़ा है कि विमान चालन का विषय और धारा 132 के अधीन कनाडा की बाध्यताओं का पूरा किया जाना राष्ट्रीय हित और महत्व के विषय हैं; और यह कि विमान चालन ऐसे विषयों का वर्ग है जिसका इतना अधिक विस्तार हो गया है कि उससे डोमीनियन की राजसत्ता पर प्रभाव पड़ता है।"

80. हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आक्षेपित अधिनियम विधिमान्य है। तदनुसार अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है। और उच्च न्यायालय में 1970 का संख्या 2291 वाला सिविल रिट

(1) (1951) एस० सी० आर० 51.
(2) (1932) ए० सी० 54, 77.

पिटीशन खारिज किया जाता है। इस न्यायालय में हुए खर्चे के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील मंजूर कर ली गई।

विसम्मत निर्णय

न्या० ए० एन० रे और आई० डी० दुआ की ओर से विसम्मत निर्णय न्या० जे० एम० शैलत ने दिया।

न्यायाधिपति शैलत—

81. विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने अभी-अभी जो निर्णय दिया है हमें उसका अध्ययन करने का अवसर मिला है किन्तु हमें खेद है कि हम उस निर्णय से अपनी सहमति प्रकट करने में असमर्थ हैं। हम जिन कारणों से असहमत हैं उनका कथन आगे किया जाता है।

82. धनकर अधिनियम, 1957 (1957 का 27) की, जैसा कि वह सितम्बर, 1957 में मूलतः पारित किया गया था, धारा 3 द्वारा हर व्यक्ति, हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब और कम्पनी के सुसंगत मूल्यांकन की तारीख पर शुद्ध धन के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित किया गया है। शुद्ध धन की परिभाषा धारा 2 (ङ) में की गई है। शुद्ध धन से वह रकम अभिप्रेत है जिससे इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार संगणित सब आस्तियों का, जो मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती की हों, संकलित मूल्य ऐसे मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती के सभी ऋणों के संकलित मूल्य से अधिक है। आस्तियों की परिभाषा धारा 2 (ङ) में की गई है। आस्तियों से हर प्रकार की जंगम या स्थावर सम्पत्ति अभिप्रेत है किन्तु इसके अन्तर्गत कृषि भूमि या ऐसी भूमि पर उगती हुई फसलें, घास या खड़े हुए वृक्ष आते हैं।

83. वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24 द्वारा धारा 2 (ङ) संशोधित की गई थी। उस धारा में से 1 अप्रैल, 1970 से प्रारम्भ होने वाले निर्धारण वर्ष के लिए और पश्चात्वर्ती सभी निर्धारण वर्षों के लिए कृषि भूमि को शामिल न करने की बात लुप्त कर दी गई थी, अतः आस्तियों की परिभाषा में कृषि भूमि को शामिल कर लिया गया था।

84. प्रत्यर्थी ने पंजाब उच्च न्यायालय में एक रिट पिटीशन फाइल किया और उसी से यह प्रस्तुत अपील उठी है। उस पिटीशन में उस संशोधन की विधिमान्यता को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा निर्धारिती की आस्तियों में से कृषि भूमि को शामिल न करने की चाल को समाप्त किया गया है। चुनौती मुख्यतया दो आधारों पर दी गई थी—

(1) कि कृषि भूमि पर ऐसा कर संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्यों द्वारा अधिरोपित किया जा सकता है न कि संघ द्वारा, और

(2) यदि ऐसा न भी हो तो संसद् को न तो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246 के अधीन और न ही उस सूची की प्रविष्टि 97 के

साथ पठित अनुच्छेद 248 के अधीन उसकी अवशिष्ट शक्ति के अधीन ऐसा कर अधिरोपित करने वाला अधिनियम अधिनियमित करने की सक्षमता थी ।

85. अन्तर्गस्त विवाद्यकों के महत्व की दृष्टि से उस रिट पिटीशन की सुनवाई उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा की गई थी। पूर्ण न्यायपीठ ने एक के मुकाबले में चार के बहुमत से उस पिटीशन को मंजूर कर लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24 उस सीमा तक, जहां तक उसमें धनकर अधिनियम, 1957 के प्रयोजनों के लिए कृषि-भूमि को आस्तियों की परिभाषा में शामिल किया गया है, संसद् की सक्षमता के बाहर है और इसलिए वह संविधान के शक्तिबाह्य है ।

86. जहां तक प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रथम प्रश्न का सम्बन्ध है उच्च न्यायालय ने **सुधीर चन्द्र नॉन बनाम धनकर आफिसर, कलकत्ता**(1), **नगर भूमि-कर सहायक आयुक्त, मद्रास और कुछ अन्य बनाम बंकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड** (2) और **श्री पृथ्वी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम बड़ोच बरो नगरपालिका** (3) में, जिन पर अब हम विचार करेंगे, इस न्यायालय के विनिश्चयों की दृष्टि से, यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 246 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन सभी आस्तियों को समग्र रूप में लेने से उन के मूल धन मूल्य पर उद्गृहीत कर या ऐसा कर जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है और जो सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन उद्गृहीत किया जाता है, सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर नहीं है अर्थात् वह भूमियों और भवनों पर कर नहीं है, चूंकि इन दोनों करों की प्रकृति भिन्न है और इसलिए सभी आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर, चाहे उसके अन्तर्गत ऐसी आस्तियों के अर्न्तान्तर्गत कृषि भूमि आती हो, सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत नहीं आता है और न ही राज्य की शक्ति का अतिक्रमण करता है। इन विनिश्चयों के प्रकाश में उच्च न्यायालय ने यह महसूस किया कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न क्षेत्र आते हैं। एक क्षेत्र दूसरे का अतिक्रमण नहीं करता और इसलिए पूर्ववर्ती के अधीन और उसके आधार पर उद्गृहीत कर के बारे में यह नहीं कहा जा जा सकता कि वह राज्यों के लिए आरक्षित भूमियों और भवनों के कराधान के क्षेत्र का अतिक्रमण करता है ।

87. दूसरे विवाद्यक पर प्रत्यर्थी की ओर से दी गई दलीलों को उच्च न्यायालय ने स्वीकार कर लिया कि (क) सूचियों की सुसंगत प्रविष्टियों के प्रकाश में, यदि उन पर हर प्रकार से विचार किया जाए, संविधान में विधान और कराधान के सम्बन्ध में कृषि और कृषि भूमि के विषय राज्यों के लिए छोड़ दिए गए हैं; (ख) उस संवैधानिक नीति के प्रकाश में संविधान में सूची 1 की प्रविष्टि 86 के क्षेत्र से कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति अपवर्जित की गई है, और (ग) ऐसा

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.
(2) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.
(3) (1970) 2 उम० नि० प० 302=(1970) 1 एस० सी० आर० 388.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

होने के कारण यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 में अन्तर्विष्ट अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत प्रविष्टि 86 में यथाअनुध्यात कर उद्‌गृहीत करने की शक्ति आती है जिससे कि अभिव्यक्त रूप से इस प्रविष्टि में दो अपवर्जित कृषि भूमियां उसके अन्तर्गत आ जाएं और इस प्रकार सम्पत्ति के उस वर्ग के सम्बन्ध में जो निर्बन्धन या अपवर्जन है वह निराकृत हो जाए। अतः संघ वित्त अधिनियम, 1966 की धारा 24 द्वारा कृषि-भूमि के शामिल न किए जाने की बात को लुप्त करना न्यायोचित ठहराने के लिए अनुच्छेद 248 और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 का आश्रय नहीं ले सकता।

88. श्री सीतलवाड ने उच्च न्यायालय के बहुमत-निर्णय की शुद्धता को चुनौती दी है। अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 का अवलम्ब करते हुए श्री सीतलवाड ने यह दलील दी कि हमारे संविधान की स्कीम के अधीन नीति यह है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में निहित की जाएं, यह कि उच्च न्यायालय में सूची 1 की प्रविष्टि 97 के सही निर्वचन का मिथ्या बोध किया है और इसलिए उस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि उस प्रविष्टि के अन्तर्गत इस प्रकार का कर, जैसा कि इस मामले में हमारे समक्ष है, कर कृषि भूमि पर उद्‌गृहीत करने की शक्ति नहीं है, यद्यपि वह शक्ति सूची 1 की प्रविष्टि 86 में प्रत्याहृत कर ली गई थी। श्री सीतलवाड का कहना यह है कि कृषि-भूमि के मूलधन मूल्य पर कर उद्‌गृहीत करने की शक्ति अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 से व्युत्पन्न की गई है क्योंकि यह सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित विषय नहीं है और इसलिए वह ठीक तरह से प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आ जाता है। संक्षेप में उनकी दलीलों का यही सार है। श्री सीतलवाड ने प्रथम प्रश्न पर कोई बहस नहीं की क्योंकि वह प्रश्न उच्च न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में विनिश्चित किया गया था। प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने भारत संघ की ओर से दी गई दलीलों की शुद्धता का प्रतिविरोध किया और सुसंगत प्रविष्टियां और अनुच्छेदों का विस्तृत विश्लेषण करने के पश्चात् उच्च न्यायालय के बहुमत निर्णय का समर्थन किया।

89. पूर्व इसके कि हम परस्पर विरोधी दलीलों की परीक्षा करने के लिए अग्रसर हों यह आवश्यक है कि हम संविधान के भाग 11 के अध्याय 1 में अधिकथित संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम का विस्तारपूर्वक उल्लेख करें। अनुच्छेद 245 के अधीन संसद् भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी और किसी राज्य का विधानमण्डल क्रमशः अपने सम्पूर्ण राज्यों अथवा उनके किसी भाग के लिए विधान बना सकेगा। विधान के भिन्न-भिन्न प्रसंग या विषय सप्तम् अनुसूची की तीन सूचियों में उपवर्णित किए गए हैं। सूची 1 में, जो संघ सूची के नाम से ज्ञात है, विधान के ऐसे प्रसंग प्रगणित हैं जिनके बारे में संसद् को विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। इसी प्रकार सूची 2 में, जो राज्य सूची के नाम से ज्ञात है, विधान के ऐसे प्रसंग प्रगणित हैं जिनके बारे में राज्य विधानमण्डलों को विधियां बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) में ऐसे खण्ड के कारण जोकि अन्यत्र किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, यदि विधान की विषय-वस्तु पर कोई विरोध या अतिव्याप्ति है तो संसद् द्वारा निर्मित विधि ही राज्य की

विधि पर अभिभावी होती है। सूची 3 के, जिसे समवर्ती सूची कहा जाता है, अन्तर्गत ऐसे प्रसंग हैं जिनके बारे में संसद् और राज्य विधानमण्डलों, दोनों, को विधियां बनाने की शक्ति प्राप्त है। यहां भी अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) में ऐसे खण्ड के परिणाम-स्वरूप, जोकि अन्यत्र किसी अन्य बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, यदि अनुच्छेद 246 के खण्ड (3) और सूची 3 के अधीन कार्य करते हुए, संसद् द्वारा निर्मित विधियों और राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित विधियों के बीच कोई असंगति विद्यमान् हो तो वह संसद् द्वारा पारित विधि को राज्य विधि पर अभिभावी करके हल की जा सकती है। जब तक संसदीय विधि चालू रहती है तब तक राज्य विधि अप्रवर्तनशील रहती है किन्तु वह फिर प्रवर्तनशील बन जाती है जब एक बार संसदीय विधि हटा दी जाती है। अनुच्छेद 246 के खण्ड (4) के अधीन संसद् को भारत के किसी ऐसे भाग के लिए, जो किसी राज्य अर्थात् संघ राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता है, किसी भी विषय के बारे में, जिसके अन्तर्गत सूची 2 के विषय भी आते हैं, विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 248 में यह घोषित किया गया है कि संसद् को उन विषयों पर, जोकि सूची 3 या सूची 2 में प्रगणित नहीं किए गए हैं, विधान बनाने की तथा उन दोनों सूचियों में से किसी भी सूची में अवर्णित कर अधिरोपित करने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह न रहे इसलिए सूची 1 में प्रविष्टि 97 रखी गई है। उस प्रविष्टि में विधान का क्षेत्र निम्नलिखित रूप से उपवर्णित किया गया है—

> "सूची 2 या 3 में से किसी में अवर्णित किसी कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय।"

अतः अनुच्छेद 246 में तीनों सूचियों में प्रगणित विषय के बारे में विधानमण्डलों की अपनी-अपनी शक्तियां अधिकथित की गई हैं। जहां उन सूचियों में कोई परस्पर विरोध होता है वहां खण्ड (1) या (2) में ऐसे खण्ड से जो अन्यत्र किसी अन्य बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, यह दर्शित होता है कि सूची 1 को सूची 3 और सूची 2 पर पूर्विकता प्राप्त है और सूची 3 को सूची 2 पर पूर्विकता प्राप्त है। इस अनुच्छेद में संसद् को जो प्रमुख रूप दिया गया है उसके बावजूद भी राज्य विधानमण्डलों को सूची 2 में उपवर्णित विषयों पर अनन्य अधिकारिता प्राप्त है और ऐसे खण्ड में, जो अन्यत्र किसी अन्य बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, अन्तर्निहित सिद्धान्त का अवलम्ब केवल परस्पर विरोध के उन मामलों में किया जा सकता है जिनको हल नहीं किया जा सकता। [देखिए **सी० पी० एण्ड बरार ऐक्ट**, 1938 (1938 **का** 16) **का मामला**(1)]।

90. संघीय और शक्तियों की वितरण पद्धति वाले कुछ संविधानों के असदृश्य हमारे संविधान के अधीन, इसके केन्द्रीय अनुस्थापित संविधान होने के अनुरूप, अनुच्छेद 248 के अधीन संसद् पर 'ऐसे किसी विषय के बारे में जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्रदान की गई है'। ऐसी शक्ति के अन्तर्गत 'ऐसे कर के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं है, अधिरोपण के लिए कोई विधि बनाने की' शक्ति भी है।

---

(1) (1939) एफ० सी० आर० 18, 38.

91. अनुच्छेद 248 से 'ऐसे किसी विषय के, जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है', अभिव्यक्ति से अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) के, जो संसद् को सूची 1 के विषयों के बारे में अनन्य शक्ति देता है, संदर्भ में तीनों सूचियों में से किसी सूची प्रगणित विषयों से भिन्न कोई विषय अभिप्रेत होना चाहिए स्पष्ट है कि अनुच्छेद 248 के अधीन संसद् को जो अवशिष्ट शक्ति दी गई है उसके अन्तर्गत ऐसी शक्ति नहीं आ सकती जो अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) के अधीन पहले ही प्रदत्त सूची 1 के विषयों पर संसद् को अनन्य रूप से दी गई है जिससे कि अनुच्छेद 248 में 'ऐसे किसी विषय' शब्दों की सूची 1 की प्रविष्टि 97 में 'कोई अन्य विषय' के बीच अन्तर करने का प्रयास किया गया है वह किसी मतभेद के बिना अन्तर है। प्रविष्टि 97 की अन्तर्वस्तु के संदर्भ में दोनों उपबन्धों की भाषा में अन्तर होना जरूरी है क्योंकि वह प्रविष्टि सूची 1 में पहले ही प्रगणित और अन्य सूचियों में प्रगणित विषयों से भिन्न विषयों के सम्बन्ध में है। इस तथ्य के होते हुए भी कि अवशिष्ट शक्ति अनुच्छेद 248 के अधीन केन्द्रीय विधानमण्डल में निहित की गई है और उसका परिणाम सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अनुदित किया गया है, यह कहने का कोई लाभ नहीं है कि इसका प्रभाव उन विषयों पर ऐसी अवशिष्ट शक्ति समनुदिष्ट करना था जिनके बारे में तीनों सूचियों की विरचना करते समय विचार या अनुध्यान नहीं किया जा सका। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है, जैसा कि काउन्सिल ने संकेत किया है, कि उन सूचियों में 209 विषय शामिल हैं और वे सतर्कतापूर्ण और विस्तृत शब्दों में और कुछ विषयों के बारे में अन्तर्भूत और अपवर्जित भाषा में रखे गए हैं। इस कारण से संविधान, **सी० पी० एण्ड बरार ऐक्ट**, 1938 (1938 **का** 16) **के मामले** ([1]) में मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर के शब्दों के अनुसार, 'विधायी सूचियों की लम्बाई और बिस्तार से संघीय संविधानों में अद्वितीय है'। सूचियों में इस प्रकार विस्तृत रूप में लिखे गए विषयों के विन्यास से तथा अनुच्छेद 246 (1) के संदर्भ में अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अन्तर्विष्ट अवशिष्ट शक्ति का अर्थान्वियन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उससे तीनों सूचियों में से किसी सूची में अप्रगणित विषयों के बारे में शक्ति अभिप्रेत है। अतः किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में, जिसके बारे में किसी अनुच्छेद या तीनों सूचियों में से किसी एक सूची की किसी प्रविष्टि के अधीन पहले ही विचार किया गया है अवशिष्ट शक्ति का साधारणतया दावा नहीं किया जा सकता।

92. जब किन्हीं ऐसे विधायी निकायों के, जिन्हें पृथक्-पृथक् शक्तियां न्यस्त की गई हों, बीच कोई परस्पर विरोध उत्पन्न हो तब संवैधानिक उपबन्धों के निर्वचन करने के सिद्धान्त सुव्यवस्थित हैं और इसलिए यहां उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उन सिद्धान्तों में से दो सिद्धान्त यहां बढ़ाने पड़ रहे हैं क्योंकि उनका उस प्रश्न से सीधा सम्बन्ध है जिसके बारे में हमसे यह अपेक्षा की गई है कि हम इस अपील में विनिश्चय करें। पहला सिद्धान्त, जो **अटर्नी जनरल फार न्यू साउथ वेल्स** बनाम **ब्रूअरि एम्पलाइज यूनियन** ([2]) में अधिकथित किया गया था वह यह है कि यद्यपि संविधान के शब्दों का निर्वचन उसी प्रकार ही किया जाना होता है जैसे कि न्यायालय अन्य कानूनों का करते हैं

([1]) (1939) एफ० सी० आर० 18, 38.

([2]) (1908) 6 सी० एल० आर० 469.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

तथापि कि ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना होता है कि जिसका निर्वचन किया जाता है वह संविधान है—एक ऐसा तन्त्र है जिसके अधीन विधियां बनाई जानी होती हैं न कि ऐसा अधिनियम है जो यह घोषित करता है कि वह विधि क्या होगी। संघीय संविधान के, जिसमें अधिकारिताओं के बीच अच्छी प्रकार से तालमेल होता है, मामले में विशेषतया ऐसा करना होता है। अतः उन व्यक्तियों को, जिन पर निर्वचन करने का कर्त्तव्य होता है, व्यापक और उदार भावना से प्रोत्साहित होना चाहिए। जहां भाषा स्पष्ट हो वहां उसे उसी प्रकार प्रभावशील किया जाना चाहिए; उसे अनावश्यक रूप से इतना नहीं खींचा जाना चाहिए जिससे कि वह अनुमानित त्रुटि या लोप को बताने में विकृत हो जाए। दूसरा सिद्धान्त **सी० पी० एण्ड बरार ऐक्ट**, 1938 (1938 **का** 16) **के मामले** ([1]) में अनुमोदन के साथ उद्धृत **अटर्नी जनरल फार ओण्टेरियो** बनाम **अटर्नी जनरल फार कनाडा के मामले** ([2]) की भाषा के अनुसार 'यदि पाठ स्पष्ट है तो पाठ निश्चायक होता है, वह क्या निदेशित करता है और क्या निषिद्ध करता है, यह एक समान होता है' यदि पाठ असंदिग्धार्थी है अर्थात् जहां पारस्परिक अनन्य अधिकारिताओं को स्थापित करने वाले शब्द इतने व्यापक हैं कि कोई विशिष्ट शक्ति उन दोनों में से किसी के अन्तर्गत आ जाती है तो उसका हल अधिनियम के संदर्भ और स्कीम में ढूंढा जाना चाहिए। जब तक कि तत्प्रतिकूल कोई बात न हो, उपधारणा यह है कि शक्ति प्रत्याहृत नहीं की जाती या वह बिल्कुल ही विद्यमान नहीं होती; वह किसी न किसी जगह होती अवश्य है।

93. यह अभिनिश्चित करने के लिए कि वह शक्ति कहां है आरम्भ में ही यह आवश्यक हो जाता है कि आक्षेपित कर की प्रकृति जान ली जाए। अधिनियम अपनी पहली धारा से पदाभिहित किया जाता है—धन-कर अधिनियम, 1957। यद्यपि जो बात महत्व पूर्ण है वह उसका सार है, न कि उसका स्वरूप या पदाभिधान, अधिनियम।जैसा कि श्री शीतलवाड ने स्वीकार किया है, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) में अन्तर्विष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था। धारा 3 के अधीन मूलतः जो कुछ प्रभारित किया गया था वह निर्धारिती के शुद्ध धन का मूल धन मूल्य है, ऐसा शुद्ध धन धारा 2 (ङ) और धारा 2(ड) द्वारा यथापरिभाषित उसके द्वारा धृत कृषि भूमि को अपवर्जित करके कुल आस्तियों को ध्यान में रखने के पश्चात् निकाला जाना होता है। इस तथ्य से कि निर्धारिती के ऋणों और दायित्वों को सकल धन से घटाने के पश्चात् संगणित शुद्ध धन मूल धन मूल्य होता है या इस तथ्य से कि उससे कृषि भूमि को कुल आस्तियों में से अपवर्जित किया गया है, प्रथमदृष्टया वह कर धन-कर से भिन्न कोई और कर नहीं हो जाता क्योंकि संसद् ने विधायी रूप से इसे इस प्रकार घोषित किया था। कोई विधानमण्डल, या तो नीति के विषय के रूप में या इस कारण से कि उसकी शक्ति निर्बन्धित शक्ति है, किसी ऐसे कर के, जिसे वह अधिनियमित करता है, प्रविषय के भीतर कुछ आस्तियों को अपवर्जित कर सकता है या उन्हें असम्मिलित कर सकता है और शेष पर कर लगा सकता है। वह यह भी विनिश्चित कर सकता है कि निर्धारिती के प्रति निष्पक्षतः और न्याय की दृष्टि से कर सकल रकम पर अधिरोपित नहीं किया जाएगा बल्कि वह

([1]) (1939) एफ० सी० आर० 18, 38.
([2]) (1912) ए० सी० 571.

उसके ऋणों और दायित्वों को घटाने के पश्चात् निकाली गई शुद्ध रकम पर अधिरोपित किया जाएगा। स्वयं उस तथ्य से अभिप्रेत नहीं होगा कि वह किसी ऐसे कर से भिन्न कर है जिसके बारे में विधानमण्डल ने स्वयं घोषणा की हो कि वह कैसा कर है। भाग्यवश, हमें सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा अनुध्यात तथा लोक वित्त और अन्य सहयोजित विषयों पर लेखों के प्रकाश में आक्षेपित संशोधन कर अधिनियम के अधीन कर की प्रकृति पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं करना है क्योंकि उस अधिनियम के बारे में कई बार इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वह एक ऐसा अधिनियम है जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। संघ के काउन्सेल ने भी यह स्वीकार किया है कि वह अधिनियम, जैसा कि वह मूलतः सन् 1957 में पारित किया गया था, एक ऐसा कर है जो उस प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है। लेकिन चूंकि आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर की प्रकृति विषयक प्रश्न पर अपील की सुनवाई के एक प्रक्रम पर विचार-विमर्श किया गया था, हम संक्षेप्ततः लोक वित्त पर कुछ उन लेखकों के दृष्टिकोण उपवर्णित करते हैं जो हमारे ध्यान में लाए गए थे।

94. जैसा कि पहले कहा जा चुका है सूची 1 की प्रविष्टि 86 व्यक्तियों, हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब या कम्पनी की आस्तियों में से कृषि भूमि को छोड़ कर उसके मूल धन मूल्य पर कर के सम्बन्ध में है। किसी कम्पनी के मूल धन पर कर के, जो उसमें वर्णित एक अन्य कर है, सम्बन्ध में विचार नहीं किया जा रहा क्योंकि वर्तमान स्थिति में हमारा ऐसे कर से कोई सम्बन्ध नहीं है। अब प्रश्न यह है कि क्या धन कर अधिनियम, 1957 के अधीन अधिरोपित कर आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर है? कर शुद्ध धन पर अधिरोपित किया जाता है, (धारा 3), इससे उन आस्तियों का मूल्य अभिप्रेत है जिन्हें कोई निर्धारिती मूल्यांकन की तारीख को धारण करता है, (धारा 4)। शुद्ध धन अधिनियम में उपबन्धित रीति में मूल्य की संगणना करके और उसमें से सभी ऋण और दायित्व घटा कर निकाला जाता है। वह कर कुल आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर है और यद्यपि हर एक आस्ति का पृथक्-पृथक् मूल्य लगाया जाता है तथापि कर समग्र रूप में सभी आस्तियों के (कृषि भूमि को छोड़कर) मूल्य पर निर्धारित किया जाता है। लेकिन यह कहा गया है कि अधिनियम के अधीन उद्गृहीत कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा यथाअनुध्यात आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर से दो कारणों से भिन्न है—(क) कि इसके अन्तर्गत सभी आस्तियां नहीं आतीं क्योंकि इसमें से कृषि भूमि अपवर्जित की गई है और (ख) इससे शुद्ध धन की संगणना निर्धारिती के ऋणों और दायित्वों को घटा कर की जाती है। ऐसी दलील में जो दोष है वह कर के आधार और उसके भार के बीच गड़बड़ी के कारण है। कर का आधार कृषि भूमि को छोड़कर आस्तियों का मूल धन मूल्य है। कृषि भूमि प्रविष्टि 86 की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में अनुदत्त निर्बन्धित विधायी शक्ति के कारण कर से छूट देनी होती है। उस विषय वस्तु के सम्बन्ध में शक्ति को वितरित करने की निश्चित नीति द्वारा निर्बन्धित किया गया था जिसके अधीन कृषि से सम्बन्धित विधान का क्षेत्र राज्यों पर छोड़ दिया गया था जैसा कि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 के अधीन था। अतः प्रविष्टि 86 में से कृषि भूमि के अपवर्जन से ही यह अभिप्रेत नहीं है कि कर आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर नहीं है। कर का भार अवधारित करने में विधानमण्डल भिन्न-भिन्न ऐसी बातों को ध्यान में रख सकता है जैसे कि निर्धारिती के प्रति निष्पक्षतः तथा निर्धारिती के सकल

मूल्य में से उसके ऋणों और दायित्वों की कटौती अनुज्ञात करके उसके शुद्ध धन के मूल धन मूल्य पर कर लगा सकता है उससे भी कर का स्वरूप नहीं बदला जाएगा। निकोलस काल्डोर ने, जिसे ऐसा व्यक्ति माना जाता है जिसकी इण्डियन टैक्स रिफार्म, 1956 की रिपोर्ट पर की गई सिफारिशों के आधार पर धन-कर अधिरोपित किया गया था, स्वयं यह सोचा था कि कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। उसने सिफारिश यह की थी कि साम्या और प्रशासनिक दक्षता के आधारों पर कर व्यापक होना चाहिए अर्थात् उसका विस्तार सभी प्रकार की सम्पत्ति पर होना चाहिए किन्तु ऐसे कर के लिए, जिसमें कृषि भूमि शामिल होगी, सांविधानिक संशोधन की आवश्यकता होगी। उसने ऐसा न कहा होता यदि उसने यह सोचा होता, जैसा कि उसने सुझाव दिया था, कि कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता। इण्डियन टैक्स रिफार्म, 1956 पर प्रोफेसर काल्डोर की रिपोर्ट, पृष्ठ 26 तनावे के अनुसार 'शुद्ध धन-कर' एक ऐसा कर है जो दायित्वों को घटा कर सभी आस्तियों के शुद्ध मूल्य पर अधिरोपित किया जाता है। ऐसी कटौती इस कर को सम्पत्ति करों से प्रभेदित करती है। इस प्रकार वह सम्पत्ति पर प्रत्यक्ष कर नहीं है और दूसरे करों के, जैसे कि मृत्यु शुल्क और पूंजी उद्ग्रहण, अनुसार इसमें निर्धारिती की आस्तियों के सकल मूल्य से उसके ऋणों और दायित्वों को घटा कर उसकी कराधेय हैसियत पर ध्यान रखा जाता है। अतः यह कर निर्धारिती के शरीर पर कर है और वह सम्पत्ति कर के विपरीत है। सम्पत्ति कर प्रत्यक्ष रूप से सम्पत्ति पर अधिरोपित किया जाता है। (बिचर्ड एम० बर्ड और आलिवर ओल्डमैन, रीडिंग्स ऑन टैक्सेशन इन डेवेलपिंग कण्ट्रीज़, पृष्ठ 281) स्वीडन में भी, धन की परिभाषा निर्धारिती की आस्तियों के मूल धन मूल्य के रूप में की गई है जो उसके आय वर्ष की समाप्ति पर उस सीमा तक होता है जिस सीमा तक वह मूल्य उसके ऋणों के मूल धन मूल्य से अधिक हो जाता है (विलियम वारनेस, वर्ल्ड टैक्स सीरीज, टैक्सेशन इन स्वीडन, पृष्ठ 617)। अतः धन-कर का आधार निर्धारिती द्वारा सुसंगत मूल्यांकन तारीख को धृत आस्तियों का मूल धन मूल्य है। इस तथ्य से कि विशिष्ट कर एक या अधिक आस्तियों को अपवर्जित करता है या अपने भार से कुछ कटौतियां, जैसे कि ऋण और दायित्व, अनुज्ञात करता है वह संगणना के क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं हो जाता और न ही वह उस कर का आधार हो जाता है जो आस्तियों का मूल धन मूल्य है। निस्सन्देह उन सभी मामलों में, जो अब तक इस न्यायालय के समक्ष या उच्च न्यायालयों के समक्ष आ चुके हैं, भारत संघ की ओर से कभी भी यह दलील नहीं दी गई थी कि धन-कर अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता है।

95. **सुधीर चन्द्र नॉन** बनाम **धन-कर आफिसर, कलकत्ता**(1) में निर्धारण और शास्ति के आदेश और अधिनियम के अधीन कर की वसूली के लिए मांग की सूचनाओं पर इन आधारों पर चुनौती दी गई थी: (i) धन कर का प्रभारण वित्तीय वर्ष के दौरान हुई धन की संवृद्धि पर अर्थात् उस धन पर ही, जो लेखा वर्ष के दौरान प्रोद्भूत हुआ, किया जा सकता है, (ii) कि संसद का यह आशय नहीं हो सकता था कि एक ही आस्तियां वर्ष प्रति वर्ष कर से प्रभारित की जाती रहें, और (iii) चूंकि 'शुद्ध धन' के जैसा कि अधिनियम द्वारा परिभाषित किया गया है, अन्तर्गत कृषि—भिन्न भूमियां और भवन आते हैं और सूची 2

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

की प्रविष्टि 49 से भूमियों और भवनों पर कर अधिरोपित करने की शक्ति राज्यों के लिए आरक्षित की गई है, इसलिए कर में विधायी सक्षमता का अभाव है। इस न्यायालय ने तीनों दलीलों को नामंजूर कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 3 तत्सम्बन्धी मूल्यांकन तारीख को शुद्ध धन के मूल धन मूल्य को प्रभारित करती है और वह केवल लेखा वर्ष के दौरान धन की संवृद्धि पर कर नहीं है और चूंकि अंतिम मूल्यांकन तारीख अर्थात् वह प्रोद्भूत होने के आधार पर नहीं था इसलिए संविधान में उसी विषय-वस्तु पर वर्ष प्रति वर्ष प्रभारित किए जाने की कोई मनाही नहीं की गई है; कि कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन अधिरोपित किया गया था कि वह भूमियों और भवनों पर प्रत्यक्ष कर नहीं था क्योंकि वह मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती की आस्तियों के मूल धन मूल्य पर था और वह उन आस्तियों के भिन्न-भिन्न संघटकों पर कर नहीं था, ऐसा होने के कारण वह कर उस कर से भिन्न है जो सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन अधिरोपित किया जा सकता है और इसलिए उस प्रविष्टि के अधीन भूमियों और भवनों पर कोई कर उद्गृहीत करने की राज्यों की शक्ति पर कोई अतिक्रमण नहीं हुआ है।

96. यह सच है कि उस मामले में पिटीशनर की ओर के उपसंजात होने वाले काउन्सेल ने इस स्थिति को स्वीकार किया था कि धन-कर अधिनियम की विषय सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है क्योंकि ऐसी स्थिति की धारणा **बनारसीदास बनाम धन-कर अधिकारी** [1] में इस न्यायालय के पूर्वतर विनिश्चय में की गई थी और इसलिए काउन्सेल ने सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्यों की शक्ति के अतिक्रमण के आधार तक अपनी चुनौती को सीमित रखा। किन्तु रिपोर्ट के पृष्ठ (iii) से लिए गए निम्नलिखित उद्धरण से यह दर्शित होता है कि न्यायालय ने काउन्सिल द्वारा स्वीकृत स्थिति से सहमति प्रकट की और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की विषय-वस्तु सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आती है—

> "भूमियों और भवनों पर कर तो सीधे भूमियों और भवनों पर ही अधिरोपित किया जाता है और ऐसे कर का उनसे एक निश्चित सम्बन्ध होता है। आस्तियों के मूल धन मूल धन मूल्य पर लगे कर का उन भूमियों और भवनों से कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता जो निर्धारिती की कुल आस्तियों के कोई संघटक हों। सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन वाली शक्ति के प्रयोग में विधान बना कर कर के बारे में यह अनुध्यात किया जाता है कि वह आस्तियों के मूल्य पर उद्गृहीत किया गया है। सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर का उद्ग्रहण करने के प्रयोजनार्थ राज्य विधानमण्डल कर के आपतन का अवधारण करने के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूल धन मूल्य को अपना सकता है। किन्तु कर दायित्व के अवधारण के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूल धन मूल्य के अपनाए जाने से हमारी राय में उक्त दोनों प्रविष्टियों के अधीन विधान बनाने के क्षेत्र अतिव्यापी नहीं हो जाएंगे।"

---

(1) 56 आई० टी० आर० 224.

इस दृष्टिकोण के समर्थन में कि अधिनियम की विषय-वस्तु सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आती है और यह कि ऐसे कर और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर के बीच कोई अतिव्यापकता या परस्पर विरोध नहीं है, न्यायालय ने तीन विनिश्चय उद्धृत किए जिनमें केरल, उड़ीसा और मैसूर के उच्च न्यायालयों ने वही दृष्टिकोण अपनाया था। [देखिए—**खान बहादुर सी० के० मम्मद केवी बनाम धनकर अधिकारी** (1), **वी० आर० नारायण मूर्ति** बनाम धनकर **आयुक्त** (2) और **श्री कृष्णराव एल० बालेकाई** बनाम तृतीय **धनकर अधिकारी**(3)]।

97. **नगर भूमि कर सहायक आयुक्त, मद्रास** बनाम **बकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड** (4) में उसी प्रकार का प्रश्न उठाया गया था यद्यपि वह उल्टा था। उस मामले में मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1966 को चुनौती दी गई थी। उस ऐक्ट से नगर भूमि के बाज़ार मूल्य पर 0·4 प्रतिशत की दर पर कर अधिरोपित किया गया था। मद्रास उच्च न्यायालय ने उस ऐक्ट को अधिनियमित करने की राज्य विधानमंडल की बिधायी सक्षमता को कायम रखा किन्तु यह अभिनिर्धारित किया कि वह ऐक्ट अनुच्छेद 14 और 19 (1) (च) का अतिक्रमण करता है। उस निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय में अपील करने पर दलील यह दी गई थी कि आक्षेपित ऐक्ट सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत न कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आता है। न्यायाधिपति रामास्वामी ने, जिन्होंने उस न्यायपीठ की ओर से निर्णय दिया जिसमें न्यायाधिपति शाह (जैसे कि वह उस समय थे) और न्यायाधिपति मित्तर भी शामिल थे और वे दोनों पूर्वतर निर्णय देने में भी शामिल थे, उस दलील को यह अभिनिर्धारित करते हुए नामंजूर कर दिया कि सारतः आक्षेपित ऐक्ट, नगर भूमि पर बाजार मूल्य की प्रतिशतता पर कर अधिरोपित करने से, प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आता है और वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के विधान के क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता है। प्रस्तुत अपील के लिए जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि न्यायाधिपति रामास्वामी ने यह अभिनिर्धारित किया कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के बीच कोई विरोध नहीं है क्योंकि प्रविष्टि 86 के अधीन कर का आधार संकलन का सिद्धान्त होगा और कर सभी आस्तियों के शुद्ध मूल धन मूल्य की समग्रता पर अधिरोपित किया जाएगा जब कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 में भूमियों और भवनों या दोनों पर यूनिटों के रूप में उद्ग्रहण अनुध्यात है। उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर उद्गृहीत करने के सम्बन्ध में मद्रास विधानमंडल, उस प्रविष्टि में शक्ति को बहुतायत के कारण, भूमियों और भवनों के मूल धन मूल्य पर उसे उद्गृहीत करने के लिए सक्षम था किन्तु चूंकि ऐसा कृषि-भिन्न भूमियों के सम्बन्ध में सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन भी किया जा सकता था इसलिए केवल उसी कारण से अतिव्याप्ति नहीं होगी। विद्वान् न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया कि 'दोनों कर अपनी मूल धारणा में भी बिल्कुल

(1) 44 आई० टी० आर० 277.

(2) 56 आई० टी० आर० 298.

(3) ए० आई० आर० 1963 मैसूर 111.

(4) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.

भिन्न हैं और उनकी विषय-वस्तुएं भिन्न-भिन्न हैं।' अत: दोनों शक्तियों में जो अन्तर है वह इसलिए है कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन कर का आधार संकलन है और इसी से दोनों कर सैद्धान्तिक रूप से भिन्न-भिन्न हो गए हैं और दोनों में उनके भार और उनके भार की विषय-वस्तु के कारण अन्तर किया जा सकता है। दोनों विधानमण्डल सुसंगत सम्पत्ति के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित कर सकते हैं किन्तु वे, जैसा कि विद्वान् न्यायाधिपति द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, सैद्धान्तिक रूप से भिन्न-भिन्न हैं। **श्री पृथ्वी कॉटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **बड़ौच बरो नगरपालिका**(1) में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि **सुधीरचन्द्र नॉन**(2) के मामले के पश्चात् जब कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 और सूची 2 की प्रविष्टि 49 की अपनी-अपनी परिधियों को स्पष्ट कर दिया गया है, इस बात पर कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता कि राज्य विधानमण्डल को गुजरात के उस मामले में सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य पर कर उद्गृहीत करने की शक्ति प्राप्त थी और इसलिए गुजरात म्युनिसिपैलिटीज़ ऐक्ट की धारा 99 विधिमान्य थी।

98. **धन-कर अधिकारी** बनाम **नजारब में**(3) दान कर अधिनियम, 1958 (1958 का 18) पारित करने की संसद् की सक्षमता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि सूची 2 की प्रविष्टि 18 के साथ पठित प्रविष्टि 49 में भूमियों और भवनों पर कर लगाने की शक्ति राज्य विधानमण्डलों के लिए आरक्षित की गई है और इसलिए संसद् अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 द्वारा प्रदत्त अवशिष्ट शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती। मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने न्यायपीठ की ओर से **नॉन के मामले**(2) का अवलम्ब किया और जैसा कि उस विनिश्चय में किया गया था भूमियों और भवनों पर प्रत्यक्षत: कर और उस कर के बीच अन्तर निकाला जोकि सैद्धान्तिक रूप से ऐसे कर, अर्थात् सम्पत्ति के दान पर कर, से भिन्न था जिसमें कि कुछ मामलों में भूमियों और भवन शामिल होते हैं। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 'भूमियों और भवनों पर कराधान के यूनिटों के रूप में कोई कर नहीं है। निस्सन्देह भूमियों और भवनों का दान की कुल रकम निकालने के लिए मूल्यांकन किया जाता है और जिस पर कर लगाया जाता है वह दान होता है। भूमियों और भवनों का मूल्यांकन तो केवल दान के मूल्य का मापदण्ड होता है। अत: इस रूप में दान-कर भूमियों और भवनों पर कर नहीं है (वह भूमियों और भवनों पर साधारण स्वामित्व पर आधारित कर है) बल्कि किसी विशिष्ट उपयोग, जो कि दान द्वारा हक का पारेषण है, पर उद्ग्रहण है। दोनों कर एक ही कर नहीं हैं और कर का भार भी वही नहीं है। दान-कर अधिनियम की विधिमान्यता को इस आधार पर कायम रखा गया था कि चूंकि तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में ऐसा कर प्रगणित नहीं किया गया है इसलिए इस बात का कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि संसद् ने सूची 2 की प्रविष्टि 18 और 49 के अधीन राज्य की शक्ति का अतिक्रमण किया है। उस अधिनियम के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित

(1) (1970) 2 उन० नि० प० 302=(1970) 1 एस० सी० आर० 388.
(2) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.
(3) (1971) 1 एस० सी० आर० 195.

अनुच्छेद 248 द्वारा संसद् में निहित अवशिष्ट शक्ति के अधीन अधिनियमित किया गया था।

99. तीनों विनिश्चयों के पूर्वोक्त विश्लेषण से स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन केन्द्र की शक्ति और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्यों की शक्ति की परिधियों पर जो विचार-विमर्श किया गया था न तो वह प्रसंगोक्ति था और न ही वह किसी उपधारणा पर किया गया था और यह कि उनकी अपनी-अपनी शक्तियों की परिधि पर विनिश्चय करते हुए उच्च न्यायालय ने भूमियों और भवनों में स्वामित्व के कारण उन भूमियों और भवनों पर यूनिटों के रूप में प्रत्यक्षतः कर (जो सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आएगा) और कृषि भूमि को वर्जित कर के कुल आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर के (जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आएगा) बीच अन्तर किया, जो **मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट के मामले**(1) में न्यायाधिपति रामस्वामी के शब्दों के अनुसार सैद्धान्तिक रूप से संकलन की प्रकृति के कारण भिन्न था, जैसा कि **नान के मामले**(2) में अभिनिर्धारित किया गया था, तथा अपनी विषय-वस्तु और भार में भी भिन्न था। इन सभी तीनों मामलों में हर एक मामले में अन्तर्वलित चुनौती की प्रकृति के कारण प्रथम मामले में सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन और दूसरे मामले में सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन और तीसरे मामले में सूची 2 की प्रविष्टि 18 और सूची 21 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित प्रविष्टि 49 के अधीन शक्ति के प्रविषय के सम्बन्ध में प्रश्न प्रत्यक्षतः उठे थे। अतः धन कर अधिनियम, 1957 के बारे में **नॉन के मामले**(2) में और **मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1966 के मामले**(1) में स्पष्टतया यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) के अन्तर्गत आता है। **मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट के मामले**(1) में, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, दलील यह दी गई थी कि वह ऐक्ट सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आता है। **नॉन के मामले**(2) में संकलन के पहलू और **मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट के मामले**(1) में सैद्धांतिक अन्तर के, इन दोनों को केन्द्र और राज्यों की अपनी-अपनी शक्तियों को चित्रित करने के प्रयोजन के लिए **दान कर अधिनियम के मामले**(3) में अपनाया गया था, स्पष्टीकरण से धन कर निश्चायक रूप से सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आ गया है।

100. ऐसी स्थिति होने के कारण आस्तियों के मूल धन मूल्य पर, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, विधिमान्य कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) के अधीन शक्ति के अधीन अधिरोपित नहीं किया जा सकता क्योंकि सूची 1 की प्रविष्टि 86, जो कि एकमात्र ऐसी प्रविष्टि है जो ऐसे कर को प्राधिकृत करती है, अभिव्यक्त निबन्धनों में कृषि भूमि को छोड़ कर आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति को निर्बन्धित करती है।

101. यह सच है कि ये प्रविष्टियां मुख्य कोटियों की साधारणतया परिगणना करती हैं। अनेक विनिश्चित मामलों में यह अधिकथित किया गया है कि उनका अर्थान्वयन

(1) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.
(2) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.
(3) (1971) 1 एस० सी० आर 195.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

उदार भावना से किया जाना चाहिए जिससे कि उनमें से हर एक के अन्तर्गत वह सब कुछ आ जाए जो उनमें प्रगणित शक्ति के समनुषंगी और आनुषंगिक है। किन्तु ऐसी शक्ति की विषय-वस्तु और प्रविषय के निर्वचन को, चाहे वह कितना भी उदार क्यों न हो, इस प्रकार नहीं अपनाया जा सकता कि उसके अन्तर्गत कोई ऐसी बात आ जाए जो प्रविष्टि के निश्चित निबन्धनों के अनुसार अपवर्जित या निर्बन्धित की गई है। अतः जब प्रविष्टि 86 की विरचना की गई थी उसके निर्बन्धनात्मक निबन्धनों से यह स्पष्ट किया गया था कि यद्यपि संसद् को आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति होगी तथापि वह शक्ति इतनी सीमाबद्ध थी कि जिससे कि प्रभार्य आस्तियों में कृषि भूमि को शामिल नहीं किया जा सकता।

102. ऐसे अपवर्जन का कारण स्वयं उन तीनों सूचियों में तथा उनमें विधान और कराधान के क्षेत्रों के वितरण की स्कीम में पाया जाता है। उन सूचियों के परिशीलन से यह पता चलता है कि कृषि का समस्त विषय, जिसके अन्तर्गत उससे न्यूनतम रूप से सहबद्ध विषय भी आ जाते हैं, राज्यों के लिए छोड़ दिया गया है। अतः सूची 1 की प्रविष्टि 82, 86, 87, और 88, जो कि आय पर, आस्तियों के मूल धन मूल्य पर, करों, सम्पदा और उत्तराधिकार शुल्कों के सम्बन्ध में हैं, सभी में एक समान रूप से कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है। इसी प्रकार सूची 3 की प्रविष्टि 6 और 7, जो कि सम्पत्ति के अन्तरण और संविदाओं के सम्बन्ध में है; अपने प्रवर्तन क्षेत्र से कृषि भूमि को अपवर्जित करती हैं। दूसरी ओर उस सूची की प्रविष्टि 41 में से जो कि निष्क्रान्त सम्पत्ति की अभिरक्षा, प्रबन्ध और व्ययन के सम्बन्ध में है, अभिव्यक्त रूप से कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है। ऐसा इस स्पष्ट कारण से किया गया है क्योंकि इनके अन्तर्गत भारत-पाक सम्बन्ध आते हैं, ऐसे विषय को अनन्य रूप से व्यष्टि राज्यों पर नहीं छोड़ा जा सकता। सूची 2 की प्रविष्टि 14, 18, 28, 30, 45, 46, 47, 48 और 49 में जो प्रत्यक्षतः या आनुषंगिक रूप से भी कृषि और कृषि भूमि के सम्बन्ध में है, उनसे सम्बन्धित शक्ति राज्यों के लिए छोड़ दी गई है। अतः कृषि आय पर कर राज्यों के लिए छोड़ दी गई है और इसलिए उसे सूची 1 की प्रविष्टि 82 के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित किसी आयकर अधिनियम के अधीन शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि उस प्रविष्टि से कृषि आय को अपवर्जित किया गया है, यद्यपि ऐसा अधिनियम निर्धारिती की विश्व आय की समग्रता पर हो और उसे सूची 2 की प्रविष्टि 46 में शामिल कर लिया गया हो। सूची 1 की प्रविष्टि 86 से कृषि भूमि को अपवर्जित करके और उसे सूची 2 की प्रविष्टि 49 में सम्मिलित करके उस प्रविष्टि के अधीन आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर के विषय में वैसा ही परिणाम होता है। अब यह सुव्यवस्थापित है कि सूची 2 की प्रविस्टि 49 के अधीन राज्य विधानमण्डल भूमियों पर, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमियां आती हैं, कर उद्गृहीत कर सकता है और इसी प्रकार कृषि भूमियों को सम्पदा और उत्तराधिकार शुल्कों के विषय में संसद् की शक्ति के क्षेत्र से अपवर्जित किया गया है। सूची 2 की प्रविष्टि 47 और 48 के अधीन कृषि भूमि के सम्बन्ध में उन शुल्कों को अधिरोपित करने की शक्ति राज्यों को सौंपी गई है अतः सूची 1 की प्रविष्टि 86 से कृषि भूमि को अपवर्जित करने का कारण स्पष्ट है अर्थात् तीनों सूचियों में अन्तर्निहित शक्तियों के वितरण की स्कीम के अधीन कृषि

के विषय को, उसके सभी समनुषंगी और आनुषंगिक पहलुओं सहित, जिनके अन्तर्गत कराधान भी है, राज्यों के लिए छोड़ दिया गया है। 1935 के ऐक्ट के अधीन भी ऐसा ही किया गया था क्योंकि उस अधिनियम की सूची 1 की प्रविष्टि 54, 55, 56 और 56-ए के अधीन कृषि भूमि को आयकर, आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्कों और फेडरल विधानमण्डल द्वारा तदधीन उदग्रहणीय सम्पदा शुल्क के क्षेत्र से अपवर्जित किया गया है और जहां तक कि कृषि भूमि का सम्बन्ध है सूची 2 की प्रविष्टि 41, 42, 43 और 43-ए के अधीन वह शक्ति प्रान्तीय विधानमण्डलों को आबंटित की गई है। यह स्पष्ट है कि उन सूचियों की विरचना करते समय संविधान में वितरण के उसी सिद्धान्त को ले लिया गया है और अपना लिया गया है।

103. यदि उपरोक्त विश्लेषण सही है और कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर कर उद्गृहीत करने की शक्ति सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) में से कृषि भूमि के अपवर्जन के कारण उसमें नहीं पाई जाती है तो प्रश्न यह उठता है कि वह शक्ति अन्यत्र कहां स्थित है, यदि वह संसद् में निहित की गई है ?

104. उस प्रश्न पर संघ के काउन्सेल ने दो दलीलें दीं। पहली दलील यह दी गई थी कि वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 में स्वतन्त्र रूप से स्थित है। दूसरी दलील यह दी गई थी कि वह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 के समान है और वह ऐसे किसी भी विषय के, जिसे सूची 2 या सूची 3 में शामिल नहीं किया गया है, सम्बन्ध में संसद् पर अवशिष्ट शक्तियां प्रदत्त करता है। अतः दलील यह दी गई थी कि यदि कोई विषय उन दोनों सूचियों में से किसी सूची में नहीं है तो आवश्यक रूप से यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह संसद् के पास है। स्पष्ट है कि उसे सूची 3 में नहीं पाया जा सकता है क्योंकि उस सूची में करों के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि नहीं है। अतः जब एक बार यह पता चल जाता है कि सूची 2 में ऐसी कोई शक्ति नहीं है तो निश्चित रूप से वह संसद् के पास होनी चाहिए। चूंकि सभी आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, मूल धन मूल्य पर कर लगाने की शक्ति न तो सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन है और न ही सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन है इसलिए वह शक्ति अनुच्छेद 248(2) के अधीन स्वतन्त्र रूप से अनुदत्त अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत आती है। श्री शीतलवाड ने यह स्वीकार किया है कि **नोन का मामला** (1) और उसके पश्चात्वर्ती दोनों मामले वहां तक ठीक ही विनिश्चित किए गए हैं जहां तक कि उनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धन-कर अधिनियम, जैसा कि 1957 में पारित किया गया था, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। किन्तु श्री शीतलवाड ने यह तर्क दिया कि चूंकि आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, मूलधन-मूल्य पर कर उस प्रविष्टि के अन्तर्गत नहीं आ सकता और चूंकि स्पष्टतया राज्यों को सूची 2 की प्रविष्टि 49 या उस सूची की किसी अन्य प्रविष्टि के अधीन किसी व्यक्ति की कुल आस्तियों पर ऐसा कर अधिरोपित करने की शक्ति नहीं है इसलिए संशोधन अधिनियम अनुच्छेद 248 (2) और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के

---

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

अन्तर्गत आना चाहिए । प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने इन दोनों दलीलों की शुद्धता का खण्डन किया और यह तर्क दिया (क) कि किसी व्यक्ति द्वारा धृत आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति सूची 1 की प्रविष्टि 86 में प्रगणित और वर्णित की गई है और उस पर उसमें विचार किया गया है और ऐसा करने से कृषि भूमि को अभिव्यक्त रूप से उसकी परिधि से अपवर्जित किया गया है और (ख) यह कि ऐसा होने के कारण अनुच्छेद 248 (2) का, जिसमें अवशिष्ट शक्ति का उपबन्ध किया गया है, अर्थान्वियन ऐसा नहीं किया जा सकता कि वह ऐसी शक्ति, जो यद्यपि किसी विशिष्ट शक्ति के अधीन प्रदत्त की गई हो, प्रदत्त करता है जो शक्तियों के वितरण की स्कीम के अधीन जानबूझकर अपवर्जित की गई है, और (ग) यह कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन एक निर्बन्धन अधिकथित किया गया है जो निर्बन्धन ऐसे कर के, जिसके अन्तर्गत किसी अन्य प्रविष्टि के अधीन, जिसमें सूची 1 की प्रविष्टि 97 भी शामिल है, अधीन कृषि भूमि पर कर के अधिरोपण को रोकती है ।

105. अनुच्छेद 248 के प्रथम खण्ड द्वारा संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में जो सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्रदत्त की गई है और उसके द्वितीय खण्ड द्वारा ऐसी शक्ति के अन्तर्गत उन सूचियों में से किसी भी सूची में अवर्णित कर अधिरोपित करने की शक्ति भी है । सूची 1 की प्रविष्टि 97, जिसमें अनुच्छेद 248 के अधीन विधान और कराधान का क्षेत्र उपवर्णित किया गया है, इस प्रकार है—

> "सूची 2 या 3 में से किसी में अवर्णित कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय ।"

दलील यह दी गई थी कि संशोधन अधिनियम, जिसके द्वारा कृषि भूमि का शामिल किया जाना हटाया गया था और तद्द्वारा ऐसी सम्पत्ति को धन-कर के विषय क्षेत्र में शामिल किया गया था, इस तथ्य के कारण सक्षम है कि सभी आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि भी है, मूल धन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति न तो सूची 1 की प्रविष्टि 86 में और न ही सूची 2 की प्रविष्टि 49 और न ही सूची 3 में पाई जाती है और इस लिए वह अनुच्छेद 248 (2) द्वारा संसद पर प्रदत्त अवशिष्ट शक्ति के कारण सूची 1 की प्रविष्टि 96 के अन्तर्गत आती है ।

106. हमारी राय में ऐसी दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता । **जैसा कि नॉन के मामले**(1) में और उसके पश्चात्वर्ती दो मामलों में अभिनिर्धारित किया गया था कि निर्धारिती की सभी आस्तियों के सकल मूल धन मूल्य पर कर से सम्बन्धित विषय-वस्तु सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत है और वह संसद को अनुदत्त की गई है । किन्तु ऐसा करते समय संविधान की विरचना करने वालों ने, सम्भवत: इस आधार पर कि कृषि सम्बन्धी समस्त विषय शक्ति के वितरण की स्कीम के अनुसार राज्य विधानमंडलों को आबंटित किया गया है, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन शक्ति की परिधि से कृषि भूमि के मूल धन मूल्य पर कर लगाने की शक्ति को अपवर्जित कर दिया है । संविधान

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) एस० सी० आर० 108.

निर्माताओं ने सिद्धान्त या नीति के तौर पर शक्ति पर विचार-विमर्श करते हुए या उसे अनुदत्त करते हुए ऐसा प्रतिबन्धित या निर्बन्धित रीति में किया। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी विशिष्ट विषय के सम्बन्ध में पूर्णतया विधान करने की अनन्य शक्ति किसी एकल प्राधिकारी में निहित पाई जानी चाहिए(1)। निस्संदेह सूची 1 में अनेक प्रविष्टियां हैं जैसे कि प्रविष्टि 9, 52, 53, 54, 62, 64 और 80 तो संसद पर निर्बन्धित शक्ति प्रदत्त करती हैं या तो इसलिए प्रदत्त करती हैं कि जिन प्रसंगों से उनका सम्बन्ध है वे प्रसंग केन्द्रीय विधानमण्डल और राज्य विधानमण्डलों के बीच वितरित किए जाते हैं या इसलिए कि यह उचित समझा गया था कि इन निर्बन्धनों सहित शक्ति प्रदत्त की जाए। अत: सूची 1 की प्रविष्टि 9, जो निवारक निरोध शीर्षक के सम्बन्ध में है, उस विषय पर केवल भारत की प्रतिरक्षा, विदेशी कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से विधि बनाने की शक्ति प्रदत्त करती हैं और सूची 3 की प्रविष्टि 3 राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने से अथवा समुदाय के लिए अत्यावश्यक सम्भरणों और सेवाओं को बनाए रखने से संसक्त कारणों के लिए विधि बनाने की शक्ति प्रदत्त करती है। अत: निवारक निरोध प्राधिकृत करने वाली विधि बनाने की शक्ति इन दोनों प्रविष्टियों में उपवर्णित कारणों से न कि किसी अन्य कारण से निर्बन्धित है। चूंकि शक्ति पर इस प्रकार विचार-विमर्श किया गया है इसलिए यह कहना असम्भव है कि निवारक निरोध का विषय प्रमाणित नहीं किया गया है या यह कि जो कुछ उससे अपवर्जित किया गया है उससे यह आशयित था कि वह किसी उपबंध के अन्तर्गत या अवशिष्ट शक्तियों से सम्बन्धित प्रविष्टि के अन्तर्गत आए। यदि संघ के काउन्सेल का कहना ठीक है तो संघ निवारक निरोध के लिए विधि बनाने की शक्ति का, उन दोनों प्रविष्टियों में विनिर्दिष्ट कारणों से भिन्न कारणों पर, इस आधार पर दावा कर सकता है कि उसे अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन ऐसा करने की अवशिष्ट शक्ति है। यदि ऐसा होता तो उन दोनों सूचियों में कारण विहित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी जिस पर संसद द्वारा ऐसी विधि अधिनियमित की जा सकती थी। अवशिष्ट शक्ति का उपबन्ध करने का उद्देश्य यह था कि किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में ही शक्ति प्रदत्त की जाए जिस का उस समय पूर्वानुमान या अनुध्यान नहीं किया जा सकता था और जो परिवर्तित परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुआ हो और जिस पर उस समय विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता था जब कि सूचियों की विरचना की गई थी। संघ के काउन्सेल द्वारा सुझाए गए निर्वचन को स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि यद्यपि संविधान के रचनाकारों ने शेष सम्पत्तियों के सम्बन्ध में शक्ति अनुदत्त करते समय जानबूझकर कृषि भूमि के प्रति निर्देश में शक्ति को लुप्त किया तथापि उन्होंने साथ ही साथ उस अपवर्जन को अवशिष्ट उपबन्ध में उसके लिए शक्ति का उपबन्ध करके अकृत कर दिया। ऐसी दलील को इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि विधिसम्मत रूप से संविधान निर्माताओं के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका ऐसा आशय था। स्पष्ट रूप से संविधान के निर्माताओं के ध्यान में शक्तियों के वितरण की स्कीम थी जिसके अधीन कृषि का विषय, जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि, आय और फसलों, दोनों पर कराधान की शक्ति भी है, राज्यों को सौंप दिया गया था।

---

(1) लेफराय, कनेडियन फेडरल सिस्टम (1963 संस्करण) पृष्ठ 97.

107. अनुच्छेद 248 और सची I की प्रविष्टि 97 के ऐसे निर्वचन को कम से कम दो उदाहरणों समर्थन मिलता है। **सुब्रामरण्यन चेट्टियार** बनाम **मुत्तूस्वामी गौण्डन**(1) में मद्रास एग्रीकलचरिस्ट से रिलीफ ऐक्ट, 1938 की विधिमान्यता को जो इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 104 में उपबंधित अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत न कि उस ऐक्ट की सप्तम् अनुसूची की सूची 2 या सूची 3 के अन्तर्गत आता है और इसलिए उस ऐक्ट में राज्य विधानमण्डल की सक्षमता का अभाव है, उसे स्वीकार नहीं किया गया था। न्यायाधीश सुलेमान ने रिपोर्ट के पृष्ठ 212 पर यह मत व्यक्त किया—

> "लेकिन उस अवशिष्ट शक्ति का आश्रय अन्तिम शरण के रूप में ही लिया जाना चाहिए। जब तीनों सूचियों की सभी कोटियां पूर्णतया निश्शेष हो जाएं केवल तभी ही अवर्णित (नानडस्क्रिप्ट) बात के बारे में सोचा जा सकता है।"

यह सच है कि उस मामले में फेडरल न्यायालय 1935 के ऐक्ट की धारा 104 पर विचार कर रहा था। उस धारा के अधीन गवर्नर जनरल, चाहे फेडरल या प्रान्तीय विधानमण्डल को उन सूचियों में से किसी सूची में अप्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में, जिसके अन्तर्गत किसी ऐसी सूची में अवर्णित कर भी है और अनुच्छेद 248 या सूची 1 की प्रविष्टि 97 है जैसे किसी उपबन्ध के बिना, कोई विधि अधिनियमित करने के लिए सशक्त करने के लिए प्राधिकृत था। किन्तु दोनों के बीच एकमात्र अन्तर यह है कि अवशिष्ट शक्ति को गवर्नर जनरल में निहित करने की बजाए संविधान ने उसे संसद् में निहित कर दिया है। दोनों उपबन्ध एक समान हैं और दोनों का निर्वचन भी एक समान है क्योंकि अनुच्छेद 248 की भाषा 1935 के ऐक्ट की धारा 104 के बहुत निकट है।

108. **दानकर अधिकारी** बनाम **नजारथ** (2) में मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने सूची 1 की प्रविष्टि 97 पर विनिर्दिष्टतया विचार-विमर्श करते हुए, (क्योंकि उनका यह निष्कर्ष था कि दानकर अधिनियम, 1958 उस प्रविष्टि के अधीन विधान के अवशिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत आता है, पहले अनुच्छेद 245, 246 और 248 के अधीन शक्ति के वितरण की स्कीम का विश्लेषण किया और उसके पश्चात् ऐसे वितरण पर उन तीनों सूचियों के आधार पर विश्लेषण किया। अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 पर विचार-विमर्श करते हुए मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने रिपोर्ट के पृष्ठ 197 और 198 पर उनका इस प्रकार अर्थान्वयन किया—

> "इसके पश्चात् अनुच्छेद 248 में विधान की अवशिष्ट शक्तियों की घोषणा है। संसद् को किसी ऐसे विषय के बारे में, जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है विधि बनाने की अनन्य शक्ति है और इस शक्ति के अन्तर्गत ऐसे करों के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं हैं, अधिरोपित करने के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति भी है। इस प्रयोजन के लिए, और सन्देहों के

---

(1) (1940) एफ० सी० आर० 188.

(2) (1971) 1 एस० सी० आर० 195.

निराकरण के लिए निम्नलिखित प्रभाव की एक प्रविष्टि संघ सूची में भी शामिल की गई है × × ×।"

मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह ने तब वह प्रविष्टि उपवर्णित की और यह मत व्यक्त किया—

"निस्सन्देह उन प्रविष्टियों का बहुत व्यापक और उदार निर्वचन किया जाना चाहिए क्योंकि प्रविष्टि के थोड़े से शब्दों से व्यापक और सर्वांगीण शक्तियां प्रदत्त करना आशयित है। लेकिन यदि इन तीनों सूचियों में से किसी भी सूची की प्रविष्टि में यह नहीं आता है तब इसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह उन तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में प्रगणित विषय नहीं है। तब वह विषय विधान के विषय के रूप में संघ सूची का प्रविष्टि 97 के अधीन अनन्य रूप से संसद् का है।"

यह बात ध्यान देने की है कि विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने संसद् की अवशिष्ट शक्ति के प्रविषय को विहित करते हुए इस उद्धरण में सभी तीनों सूचियों का वर्णन किया है यद्यपि अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 केवल सूची 2 और सूची 3 के प्रति निर्देश करते हैं।

109. संविधान ने अनुच्छेद 246(1) द्वारा सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 में उपवर्णित विषयों के सम्बन्ध में विधान और कराधान की अनन्य शक्तियां पहले ही संसद् को अनुदत्त कर दी हैं। कोई भी राज्य विधि, जो सारतः संसदीय अधिनियम का अधिक्रमण करती है वह अविधिमान्य होगी। सूची 1 के सम्बन्ध में इस प्रकार का उपबन्ध करने से विधान के लिए जो विषय बच जाएंगे वे जो सूची 2 और 3 में दिए गए हैं और ऐसे विषय बच जाएंगे जो उन दोनों सूचियों में नहीं पाए जाते हैं। अतः अन्तिम प्रकार के विषय केवल ऐसे अवशिष्ट विषय हो सकते हैं जिनके सम्बन्ध में अनन्य शक्ति संसद् को ही अनुदत्त की जानी थी। इससे यह अभिप्रेत है कि विधान का केवल वही क्षेत्र जिसके बारे में इन तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में विचार-विमर्श नहीं किया गया है, अनुच्छेद 248 के अधीन अवशिष्ट शक्ति की विषय वस्तु हो सकता है। अनुच्छेद 248 का ऐसा अर्थान्वयन उस अर्थान्वयन के अनुरूप है जो फेडरल न्यायालय ने गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 104 का किया था जिसका अनुसरण करते हुए अनुच्छेद 248 विरचित किया गया था और वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के शब्दों के भी अनुरूप है। उस प्रविष्टि के शब्दों अर्थात् 'सूची 2 या 3 में × × × अप्रगणित कोई अन्य विषय' से कोई ऐसा विषय, जो इसकी पूर्ववर्ती प्रविष्टियों अर्थात् सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 का विषय नहीं है और कोई ऐसा विषय, जो सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित नहीं है, अभिप्रेत होना चाहिए। अनुच्छेद 248 द्वारा घोषित अवशिष्ट शक्ति, और जिसका क्षेत्र सूची 1 की प्रविष्टि 97 में परिभाषित किया गया है, निश्चित रूप से उन तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में न पाए जाने वाले विधान के क्षेत्र या कोटि के सम्बन्ध में शक्ति होनी चाहिए। दान-कर, व्यय कर जैसे कर और वार्षिकी निक्षेप स्कीम (अन्यूटी डिपाजिट स्कीम) ऐसे विषय हैं जो इन तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में नहीं पाए जाते हैं, और इसलिए उनके सम्बन्ध में अधिनियमितियां निस्सन्देह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अन्तर्गत आएंगी।

110. किन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि कृषि भूमि सहित आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर एक ऐसा कर है जो तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में वर्णित नहीं है और इसलिए वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है ? जब संघ के काउन्सेल ने अपना मामला पेश किया, उसने यह दलील दी कि चूंकि सूची 1 की प्रविष्टि 86 में कृषि भूमि को अपवर्जित किया गया है इसलिए विधान और कर के उस क्षेत्र के बारे में यह कहा जाना चाहिए कि वह एक ऐसा क्षेत्र है जो उस सूची में अप्रगणित और अवर्णित है और वह संकलन पर कर होने के कारण सैद्धान्तिक रूप से उस कर से भिन्न है जो सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्यों द्वारा उद्गृहीत किया जा सकता है, यह कर सूची 2 में भी प्रगणित नहीं है और इसलिए उसके इस भाग के बारे में यह कहा जाना चाहिए कि वह अवशिष्ट प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है।

111. उस दलील का उत्तर उस निर्वचन पर निर्भर करता है जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 का है। शक्ति की वितरण पद्धति में, जब कभी कोई यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई कानून समुचित विधानमण्डल की शक्ति के अन्तर्गत है तब उसके प्रारूप की बजाय सार की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। जब एक बार यह मालूम हो जाए कि कोई ऐसी शक्ति है तो उसका फेडरल विधानमण्डल द्वारा प्रयोग इस प्रकार सर्वांगीण रूप से किया जा सकता है मानो वह एकिक (संघीय) पद्धति की शक्ति है, निस्सन्देह उसका उपयोग संविधान की अभिव्यक्त परिसीमाओं तथा राज्यों के लिए आरक्षित शक्तियों में हस्तक्षेप किए बिना राज्यों की आवश्यक स्वतन्त्रता के अधीन किया जाएगा [**किंग बनाम बार्टर**(1)]। जैसा कि पहले कहा जा चुका है संविधान निर्माता, शक्तियों का वितरण करते समय, किसी विशिष्ट शक्ति को या तो अनन्य रूप से या प्रतिबन्धों या निर्बन्धनों सहित अनुदत्त कर सकते हैं। पश्चात्वर्ती मामलों में यद्यपि शक्ति का उपयोग इतने सर्वांगीण रूप से किया जा सकता है जितना कि सम्भव हो तथापि उसका प्रयोग उससे सम्बन्धित अधिरोपित निर्बन्धनों के अध्यधीन ही किया जा सकता है [**अटर्नी जनरल फार दि डोमीनियन आफ कनाडा बनाम अटर्नी जनरल फार दि प्रोविन्स आफ एल्बर्टा**(2)]। इस तथ्य से कि कोई शक्ति, सम्पूर्णतया नहीं बल्कि कुछ निर्बन्धनों सहित, प्रदत्त की जाती है, यह अभिप्रेत नहीं हो सकता कि उसके सम्बन्ध में विषयवस्तु पर विचार-विमर्श नहीं किया गया है और इसलिए वह अवशिष्ट विषयों से सम्बन्धित उपबन्ध के अन्तर्गत आती है। यदि **नॉन के मामले**(3) के विनिश्चय तथा दो पश्चात्वर्ती विनिश्चयों पर दृढ़ रहा जाए कि वे ठीक तरह से विनिश्चित किए गए थे तो किसी निर्धारिती की आस्तियों के, कृषि भूमि को छोड़ कर, मूल धन मूल्य पर कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। उस दृष्टिकोण से संसद् के बारे में यह कहा जाना चाहिए कि उसने उस प्रविष्टि के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) के अधीन अपनी अनन्य शक्ति का प्रयोग करते हुए धन-कर अधिनियम, 1957 अधिनियमित किया था।

---

(1) 6 सी० डी० 41, 42.
(2) (1916) ए० सी० 588, 595.
(3) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

112. तब क्या यह कहना सम्भव होगा कि वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24 द्वारा कृषि भूमि के अपवर्जन को हटा देने से और तद्द्वारा संशोधित अधिनियम की धारा 3 के क्षेत्र के भीतर कृषि भूमि को शामिल करके वह अधिनियम ऐसा अधिनियम नहीं रहा जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन पारित किया गया था या उस अधिनियम ने ऐसा स्वरूप अर्जित कर लिया जो उससे भिन्न था जो उसका पहले था जिससे की वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246(1) के अन्तर्गत आने से समाप्त हो गया ? इसका उत्तर नकारात्मक ही है। इसका कारण यह है कि, जैसे कि नॉन के मामले[1] में अभिनिर्धारित किया गया था, अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अनुसरण में और उसके अधीन अधिनियमित किया गया था, क्योंकि यह कृषि भूमि को छोड़ कर निर्धारिती की सभी आस्तियों के सकल मूल धन मूल्य पर कर उद्गृहीत करने वाला अधिनियम है अत: वह सूची 1 में प्रगणित विषय पर, जिसके सम्बन्ध में संसद् को अनन्य शक्ति प्राप्त थी, अनुच्छेद 246(1) के अधीन पारित किया गया था। उस उपबन्ध के, जिसके अधीन वह अधिनियमित किया गया था, सम्बन्ध में प्रश्न का अवधारण करते समय अधिनियम की विषयवस्तु और उसके सम्बन्ध में शक्ति के प्रविषय के बीच जो अन्तर है उस पर ध्यान रखा जाना होगा। अधिनियम की विषयवस्तु, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, कुल आस्तियों का मूल धन मूल्य है, इसका प्रविषय या प्रवर्तन क्षेत्र कृषि भूमि को छोड़ कर सभी आस्तियों का मूल धन मूल्य है। यह कहना असम्भव है कि प्रविष्टि में से कृषि भूमि के अपवर्जित कर देने से यह विषय दो विषयों में—अनुज्ञेय और अपवर्जित—बंट जाता है। विषय तो एक ही है अर्थात् सभी आस्तियों का मूल धन मूल्य सिवाय इसके कि उससे सम्बन्धित शक्ति एक प्रकार की आस्ति को उससे अपवर्जित करके निर्बन्धित की गई है। परिणामत: यह कहना असम्भव है कि इसमें दो विषय है, एक सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन अनुज्ञेय और दूसरा अन्यत्र कहीं भी प्रगणित नहीं है और इसलिए वह अनुच्छेद 248 और/या उस सूची की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है। यदि ऐसा है तो, जैसे कि दलील दी गई है, कृषि भूमि के सम्बन्ध में प्रविष्टि 86 में जो निर्बन्धन है उसका कोई अर्थ नहीं निकलता। ऐसी दलील से यह अभिप्रेत होगा कि यद्यपि प्रारूपकार ने सूची 1 की प्रविष्टि 86 से कृषि भूमि को अपवर्जित किया था तथापि उसका आशय उस अपवर्जन को अनुच्छेद 248 और प्रविष्टि 97 के अवशिष्ट क्षेत्र में शामिल करके उस अपवर्जन को अकृत करना था।

113. किन्तु यह कहा गया था कि यदि सूची 1 की प्रविष्टि 86 और 97 का निर्वचन सही है, हमारे मतानुसार वह सही है, तो इससे यह अभिप्रेत होगा कि न तो संसद् और न ही राज्य विधानमण्डल किसी निर्धारिती द्वारा धृत कृषि भूमि सहित सभी आस्तियों के मूल धन मूल्य पर धन-कर उद्गृहीत नहीं कर सकते। यह सच है कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन संसद् कृषि भूमि को उस प्रविष्टि के अधीन अधिरोपित कर के क्षेत्र के भीतर शामिल नहीं कर सकती। न ही राज्य विधानमण्डल सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन ऐसा कर अधिरोपित कर सकता है। इससे यह अर्थ नहीं है कि कृषि भूमि के मूल धन

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

मूल्य पर कर अधिरोपित नहीं किया जा सकता। ऐसी शक्ति सूची 2 की प्रविष्टि 49 में अन्तर्विष्ट है। किन्तु ऐसे परिणाम में कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है क्योंकि आय कर के विषय में भी दोनों में से कोई भी किसी निर्धारिती की समस्त आय पर कर अधिरोपित नहीं कर सकता। सूची 1 की प्रविष्टि 82 के निर्बन्धन के कारण संसद् ऐसा नहीं कर सकती; राज्य ऐसा कर अधिरोपित नहीं कर सकते क्योंकि उनकी शक्ति सूची 2 की प्रविष्टि 46 के अधीन केवल कृषि आय तक निर्बन्धित है। यही बात उत्तराधिकार और सम्पदा शुल्कों के विषय में भी है। इन प्रविष्टियों के किसी भी विषय पर विधि बनाने या कर अधिरोपित करने की दोनों विधानमण्डलों की शक्ति निर्बन्धित है यद्यपि दोनों में से हर एक को जो-जो क्षेत्र आबंटित किए गए हैं उन पर हर एक को सर्वांगीण शक्ति प्राप्त है। ऐसी शक्ति पर निर्बन्धन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संघ और राज्य विधानमण्डलों के बीच विधान के किसी विशिष्ट क्षेत्र के सम्बन्ध में शक्ति के वितरण के कारण हो सकता है या इसलिए हो सकता है कि विधान का विषय या क्षेत्र स्वयं नीति के कारणों की शर्त से प्रतिबन्धित है। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि अपवर्जित या निर्बन्धित क्षेत्र के, जिसके सम्बन्ध में या तो दोनों विधानमण्डलों को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है या उनमें से एक को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अवशिष्ट शक्ति उपबन्धित करने वाले उपबन्ध के अन्तर्गत आता है। जब एक बार विधान का कोई विषय या क्षेत्र सूचियों में से किसी एक सूची में प्रगणित कर दिया जाता है या उस पर विचार किया जाता है तब चाहे वह विषय सम्पूर्णतः या निर्बन्धित रूप में उसमें प्रगणित किया गया हो, इस आधार पर कि वह शेष पर प्रवृत्त रहता है, अवशिष्ट उपबन्ध का आश्रय लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा अर्थान्वयन या तो विधान के प्रसंग के आंशिक क्षेत्र पर ही शक्ति प्रदत्त करने के आशय को अकृत कर देगा या तीनों विस्तृत सूचियों के माध्यम से प्रभावित शक्ति के वितरण की नाजुक पद्धति का तिरस्कार कर देगा।

114. संघ के काउन्सेल ने अपने आरम्भ के भाषण में अपील के सम्बन्ध में इस आधार पर तर्क दिया कि आक्षेपित संशोधन अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्यों के लिए आरक्षित क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता है क्योंकि कर का स्वरूप ऐसा है कि वह उस प्रविष्टि के अधीन पारित किसी विधि द्वारा उद्गृहीत नहीं किया जा सकता था। उस समय उसने यह दलील दी कि कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 और अनुच्छेद 248(2) और सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अवशिष्ट शक्ति के संयुक्त प्रभाव द्वारा संसद् की शक्ति के पूर्णतया अन्तर्गत आ जाता है। किन्तु उसने अपने उत्तर में अपनी दलील को और बढ़ा दिया और यह कहा कि जब एक बार यह मालूम हो जाता है कि वह आक्षेपित अधिनियम सूची 2 की प्रविष्टि 49 का अतिक्रमण नहीं करता है तब संसद् अनुच्छेद 248 के अधीन सूची 1 की प्रविष्टि 86 से स्वतन्त्र रूप से अधिरोपित कर सकता है। दलील यह दी गई थी कि अनुच्छेद 248 के अधीन सूची 2 और सूची 3 में अप्रगणित सभी विषयों के सम्बन्ध में संसद् पर स्वतन्त्र और सुभिन्न शक्ति प्रदत्त की गई है। चूंकि सूची 3 करों के सम्बन्ध में नहीं है इसलिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित अधिनियम राज्य सूची की किसी प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है। दलील यह दी गई थी कि अनुच्छेद 248 तात्विक रूप में ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 के समान है और इसलिए उचित जांच, जैसा कि उस अधिनियम के अधीन है, यह होगी कि क्या आक्षेपित कर सूची 2 के

अन्तर्गत आता है और यह कि यदि वह उसके अन्तर्गत नहीं आता है तो उस शक्ति के बारे में निश्चित रूप से यह समझा जाना चाहिए कि वह संसद् के पास है। इस दलील के समर्थन में उसने अनुच्छेद 248 के इन शब्दों पर 'संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में, जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की शक्ति है' जोर दिया और यह दलील दी कि सूची 3 में किसी कर के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि अन्तर्विष्ट नहीं है इसलिए केवल सूची 2 ही सुसंगत है अतः ऐसे प्रश्न पर विचार करते हुए, जैसा कि हमारे समक्ष है, उचित जांच यह होगी कि क्या आक्षेपित कर सूची 2 की प्रविष्टि 49 का अतिक्रमण करता है क्योंकि वही एक सुसंगत प्रविष्टि है और यदि यह मालूम हो जाए कि वह अतिक्रमण नहीं करता है तो उस शक्ति के बारे में यह कहा जाना चाहिए कि वह संसद् के पास है, दूसरे शब्दों में जो विषय सूची 2 में नहीं है उसके बारे में यह कहा जाना चाहिए कि वह संसद् के पास है। इस उपधारणा पर कि अनुच्छेद 248 तात्विक रूप में कनेडियन कान्स्टीट्यूशन ऐक्ट की धारा 91 के प्रथम भाग के समान है, उसने लेफराय की पुस्तक कनाडा का फेडरल सिस्टम (1913 संस्करण) पृष्ठ 120 के कुछ उद्धरणों का, **रस्सल बनाम दि क्वीन**(1) का और **सुब्रामणियन बनाम मुथुस्वामी**(2) में उस संविधान के सम्बन्ध में फेडरल न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मतों का अवलम्ब लिया। उसने आगे यह दलील दी कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 राज्यों को भूमियों और भवनों पर कर अधिरोपित करने की शक्ति प्रदान करती है; वह शक्ति थी भूमियों और भवनों पर किसी निर्धारिती के स्वामित्व के कारण कराधान के यूनिटों के रूप में ऐसी भूमियां और भवनों पर प्रत्यक्षतः कर अधिरोपित करना। ऐसा कर प्रतिवोध, विषयवस्तु और भार के सम्बन्ध में उस आक्षेपित कर से भिन्न होगा जो निर्धारिती की कुल आस्तियों के मूल धन मूल्य पर कर है, जैसा कि **नॉन के मामले** (3) में अभिनिर्धारित किया गया था। परिणामतः ऐसे कर के, जिसे राज्य सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन उद्गृहीत नहीं कर सकते, बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह उस शक्ति का अतिक्रमण करता है। ऐसा होने के कारण आक्षेपित कर जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि पर कर आता है, उद्गृहीत करने की शक्ति के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 248 के अधीन है।

115. प्रश्न यह है कि क्या कनेडियन (कान्स्टीट्यूशन) ऐक्ट समुचित समानता प्रदान करता है और क्या उस ऐक्ट की धारा 91 और 92 के निर्वचन से सम्बन्धित विनिश्चयों का अवलम्बन हमारे संविधान की विधायी शक्ति के वितरण की स्कीम के निर्वचन के प्रयोजन के लिए किया जा सकता है ?

116. कनाडा ऐक्ट की धारा 91 की संरचना चार भागों में है। पहला भाग आरम्भिक भाग है जिसमें यह कहा गया है कि संसद् को 'कनाडा की शान्ति, व्यवस्था और सुशासन के लिए' प्रान्तीय विधानमण्डलों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषयवर्गों के भीतर न आने वाले सभी विषयों के सम्बन्ध में विधियां बनाने की शक्ति होगी। **अटर्नी जनरल**

(1) (1881) 7 ए० सी० 829.
(2) (1940) एफ० सी० आर० 188.
(3) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

फार ओण्टेरिया बनाम **अटर्नी जनरल फार दि डोमीनियन**(1) में प्रिवी काउन्सेल की ओर से लार्ड वाटसन ने यह विचार व्यक्त किया कि इस भाग में अन्तर्विष्ट शक्ति दूसरे भाग में, जिसमें 29 खण्ड या विषयों के शीर्षक उपवर्णित किए गए हैं, अन्तर्विष्ट शक्तियों की अनुपूरक शक्ति है। प्रगणित विषयों पर शक्ति को अनुपूरित करने वाले प्रथम भाग के सिद्धान्त से **कनेडियन पैसीफिक वाइन कम्पनी लिमिटेड** बनाम **तुलेव** (2) में लार्ड विरकनहैड और **प्रोपराइटरीज़ आर्टीकल्स ट्रेड एसोसिएशन** बनाम **अटर्नी जनरल फार कनाडा** (3) में लार्ड एटकिन नियन्त्रित नहीं हुए। उन मामलों में दोनों ने स्पष्ट शब्दों में यह अभिनिर्धारित किया कि धारा का पहला भाग ही संसद् पर शक्ति प्रदत्त करता है और यह कि दूसरे भाग में प्रगणित विषय केवल इस बात का दृष्टान्त देते हैं कि कुछ विषय साधारण वर्णन अर्थात् 'कनाडा की शान्ति, सुव्यवस्था और सुशासन' के अधीन आते हैं। दूसरे भाग में उसमें प्रगणित विषयवर्गों के सम्बन्ध में संसद् की अनन्य शक्ति की घोषणा अन्तर्विष्ट है। लेकिन यह घोषणा संसद् को प्रारंभिक रूप से समनुदिष्ट शक्ति की व्यापकता को या शान्ति, सुव्यस्था और सुशासन के लिए विधियां बनाने की उसकी अनन्य शक्ति को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं करती है। तीसरे भाग में 29 खण्ड या विषय शीर्षक प्रगणित किए गए हैं। चौथा भाग अन्तिम पैरा में है और उसमें भी यह घोषणा अन्तर्विष्ट है कि इस धारा में प्रगणित किसी भी विषय वर्ग के अन्तर्गत आने वाले किसी विषय के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह धारा 92 में प्रान्तीय विधानमण्डल को अनन्य रूप से समनुदिष्ट प्रगणित विषयवर्गों में समाविष्ट स्थानीय या प्राइवेट प्रकृति के विषयवर्गों के अन्तर्गत आता है। परिणामतः यदि कोई विषय धारा के तीसरे भाग में प्रगणित 29 शीर्षकों में से किसी के अन्तर्गत आता है तो उसके बारे में यह समझा जाता है कि वह प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट किसी विषयवर्ग के अन्तर्गत नहीं आता है। धारा 91 के प्रारम्भिक भाग में डोमीनियन को समनुदिष्ट शक्ति अर्थात् शान्ति, सुव्यवस्था और सुशासन से सम्बन्धित विषयों और धारा 92 में शीर्षक 16 अर्थात् 'प्रान्त में केवल स्थानीय या प्राइवेट प्रकृति के साधारणतया सभी विषयों' के सम्बन्ध में शक्ति स्पष्ट रूप से यह दर्शित करती है कि कनाडा ऐक्ट में वितरण पद्धति वह पद्धति है जो 'परस्पर गुथी हुई (इण्टरलेसिंग) के नाम से ज्ञात है न कि विकल्पात्मक (डिसजंक्टिव) नाम से जहां दोनों को क्रमशः उन्हें समनुदिष्ट स्वतन्त्र शक्तियां प्राप्त होंगी जैसा कि हमारे संविधान में है। ऐसा परस्पर गुथी होना (इण्टरलेसिंग) धारा 91 में प्रगणित विषयों में शीर्षक 29 से दिखाई देता है। उस धारा द्वारा ऐसे विषयों के सम्बन्ध में, जो प्रान्तीय विधानमण्डलों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषयवर्गों के प्रगणन में अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित किए जाते हैं, शक्ति डोमीनियन दी जाती है।

117. शक्तियों के वितरण की इसी विचित्र स्कीम के आधार पर ही **रस्सल** बनाम **क्वीन** (4) में प्रिवी काउन्सिल ने **सिटीजन्स इन्श्योरेन्स कम्पनी** बनाम **पारसन्स** (5) में अपने

(1) (1896) ए० सी० 348.
(2) (1921) 2 ए० सी० 417.
(3) (1931) ए० सी० 310.
(4) (1881) 7 ए० सी० 829, 836.
(5) (1881-1882) 7 ए० सी० 96.

पूर्वतर विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह कथित किया था कि जब कभी डोमीनियन और प्रान्तों के विधानमण्डलों की अपनी-अपनी शक्तियों के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठता है तो उस समय जिस प्रश्न पर पहले अवधारण किया जाना होगा वह यह होगा कि क्या प्रश्नगत कानून धारा 92 में प्रगणित विषयवर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत आता है यदि वह किसी वर्ग के अन्तर्गत आता है तब उसके पश्चात् आगे और प्रश्न उठेगा कि क्या ऐक्ट का विषय धारा 91 में प्रगणित विषयों में से किसी विषय के अन्तर्गत नहीं आता है और इस प्रकार वह तब भी डोमीनियन संसद् का नहीं है। किन्तु यदि ऐक्ट की धारा 92 द्वारा प्रान्तों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट विषयवर्गों में से किसी वर्ग के अन्तर्गत नहीं आता है तो आगे कोई प्रश्न नहीं रहेगा और ऐक्ट धारा 91 के प्रथम भाग के साधारण शब्दों के अन्तर्गत आएगा। उस समय से प्रिवी काउन्सिल ने, कई अवसरों पर, धारा 91 और 92 का अर्थान्वयन करते हुए मत-भिन्नता प्रकट की है। किन्तु इस मत-भिन्नता के बावजूद **अटर्नी जनरल फार कनाडा** बनाम **अटर्नी जनरल फार ब्रिटिश कोलम्बिया** [1] में लार्ड टामलिन ने संक्षेप रूप में जो चार प्रस्थापनाएं स्थिर की हैं उनसे निर्वचन की संहिता बनती है। इनका अनुमोदन **रेगूलेशन एण्ड कन्ट्रोल आफ एयरोनाटिक्स इन कनाडा के मामले** [2] में **सिल्वर ब्रदर्स लिमिटेड के मामले** [3] में, और अन्तिम रूप से **कनेडियन पैसेफिक रेलवे कम्पनी** बनाम **अटर्नी जनरल फार ब्रिटिश कोलम्बिया** [4] में किया गया था और इसलिए स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि वे इन दो धाराओं के निर्वचन के सुव्यवस्थापित सिद्धान्त हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(1) संसद् का विधान, जहां तक कि वह धारा 91 में अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विषयों से निश्चित रूप से सम्बन्धित है, सर्वोपरि प्राधिकार है, चाहे वह धारा 92 द्वारा प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट विषयों का अतिक्रमण करता है।

(2) अभिव्यक्त रूप से प्रगणित विषयों पर विधान की शक्ति के अनुपूरक के रूप में धारा 91 द्वारा संसद् पर प्रदत्त विधान की साधारण शक्ति निश्चित रूप से ऐसे विषयों तक सीमित रहनी चाहिए जो निर्विवाद राष्ट्रीय हित और महत्व के हों।

(3) ऐसे विषयों के लिए, जो यद्यपि अन्यथा प्रान्तीय विधानमण्डलों की सक्षमता के अन्तर्गत होते हैं तथापि धारा 91 में प्रगणित विषयों में से किसी एक विषय पर उसके द्वारा प्रभावशील विधान के लिए आवश्यक रूप से अनुषंगी हैं, उपबन्ध करना संसद् की क्षमता के भीतर है; और

(4) ऐसा कार्यक्षेत्र हो सकता है जिसमें प्रान्तीय और डोमीनियन विधान में अति व्याप्ति हो अर्थात् जहां विषयवर्गों या विधायी शक्ति के शीर्षकों में अति व्याप्ति हो, वहां कोई भी विधान शक्तिबाह्य नहीं होगा यदि क्षेत्र स्पष्ट है किन्तु

---

(1) (1930) ए० सी० 111.

(2) (1933) ए० सी० 54.

(3) (1932) ए० सी० 514.

(4) (1950) ए० सी० 122.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

यदि क्षेत्र स्पष्ट नहीं है और दोनों विधानों में टक्कड़ होती हो तो डोमीनियन विधान अभिभावी होना चाहिए। [वारसी, पी० एफ० डिस्ट्रीब्यूशन आफ लेजिस्लेटिव पावर इन कनाडा (1954वां संस्करण) पृष्ठ 73-78]।

118. साधारण शब्दावली में शक्तियों के ऐसे वितरण का उपबन्ध करने का दोहरा उद्देश्य है—(क) अपरिवर्तनीयता को दूर किया जाए जिसके बारे में यह आशंका थी कि विस्तृत सूचियों के होने से अपरिवर्तनीयता आ जाएगी तथा (ख) किसी भी शक्ति को आरक्षित या प्रत्याहृत न करना। कांस्टीट्यूशन ऐक्ट की विरचना करते समय स्पष्ट उद्देश्य उसे ब्रिटिश संविधान के अनुसार, जिसकी मुख्य बातों में से संसदीय सर्वोपरिता मुख्य बात ही बनाना था और इसलिए कोई शक्ति ऐसी न छोड़ी जाए जो धारा 91 और 92 के अन्तर्गत न आती हो। ऐक्ट की उद्देशिका में ही यह घोषित किया गया है कि उसका उद्देश्य कनाडा को एक ऐसा संविधान प्रदान करता है जो सिद्धान्ततः यूनाइटेड किंगडम के अनुसार है। 'उस उद्देश्य के कारण तथा धारा 91 और 92 की विचित्र भाषा के कारण **अटर्नी जनरल फॉर ओण्टेरिया** बनाम **अटर्नी जनरल फॉर कनाडा**[1] में प्रिवी काउन्सिल ने यह मत व्यक्त किया कि एक ओर डोमीनियन के बीच और दूसरी ओर प्रान्त के बीच वितरित शक्तियों के अन्तर्गत कनाडा के सम्पूर्ण क्षेत्र के भीतर स्वशासन का सभी क्षेत्र आ जाता है और यह कि वह 'ऐक्ट की सम्पूर्ण स्कीम और नीति के लिए हानिकार होगा यदि यह उपधारणा की जाए कि आन्तरिक स्वशासन का कोई भाग कनाडा से प्रत्याहृत किया गया है'। लेफरॉय ने यह मत व्यक्त किया—

> "हमारे फेडरेशन ऐक्ट की स्कीम ऐसी थी कि कोई आरक्षित शक्ति न हो किन्तु कनाडा में उसी प्रकार की विधायी शक्ति होनी चाहिए जैसी ब्रिटिश संसद में है, जहां तक कि वह प्रान्तों के संगठन के लिए और इम्पायर के अन्तर्गत डोमीनियन के रूप में हमारी स्थिति से संगत है" [लेफराय, कनेडियन फेडरल सिस्टम (1913वां संस्करण पृष्ठ 97]।

चूंकि ब्रिटिश संसद नमूने के रूप में थी इसलिए प्रधानता पहले उन विधियों को दी गई थी जो संसद् द्वारा बनाए गए थे और उसके बाद ऐसा उपबन्ध किया गया था कि उन सभी शक्तियों के सम्बन्ध में, जो अभिव्यक्त रूप से प्रान्तीय विधानमण्डलों को समनुदिष्ट नहीं की गई थी, यह समझा जाएगा कि वे संसद में निहित हैं। **वैलिन** बनाम **लैंगलोट्स** [2]।

119. अतः यह स्पष्ट है कि कनाडा के ऐक्ट और हमारे संविधान में वितरण पद्धति के बीच न तो विषयवस्तु में और न ही स्कीम में कोई समानता है। हमारे संविधान में साधारण और अविनिर्दिष्ट शब्दावली में कोई ऐसी घोषणा नहीं की गई है जैसी कि धारा 91 के प्रथम भाग में की गई है और न ही 'कनाडा की शान्ति, सुव्यवस्था और सुशासन के लिए' और धारा 91 में 'प्रान्तों के विधानमण्डलों को अनन्य रूप से समनुदिष्ट इस ऐक्ट द्वारा विषयवर्गों के भीतर न आने वाले सभी विषयों के सम्बन्ध में' जैसी अभिव्यक्तियों द्वारा प्रदान की गई शक्तियों को साथ जोड़े जाने की बात कही गई है।

---

(1) (1912) ए० सी० 571.

(2) (1879) 5 ए० सी० 155.

अनुच्छेद 246 के अधीन संघ विधानमण्डल और राज्य विधानमण्डलों की शक्तियों और तीनों सूचियों के अंकित विधान के क्षेत्र विस्तृत और संक्षिप्त निबन्धनों के अच्छी प्रकार से परिभाषित किए गए हैं और वे विकल्पात्मक और स्वतन्त्र हैं। राज्य विधानमण्डल संघ विधानमण्डल के प्रत्यायोजिती नहीं हैं और न ही वे संघ विधानमण्डल से अपनी शक्तियां व्युत्पन्न करते हैं और उनके पास अपने-अपने विधायी क्षेत्रों के भीतर सर्वांगीण शक्तियां हैं, जिनके अन्तर्गत उन्हें समनुदिष्ट विषयों के आनुषंगिक और समनुषंगी सभी विषयों पर विधान करने की शक्ति आती है। अनुच्छेद 246 में, ऐसे खण्ड के कारण जो कि अन्यत्र किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होगा, संसदीय विधान की प्रमुखता का प्रश्न केवल वहां उठता है जहां कहीं अधिकारिताओं की अतिव्याप्ति होती है या प्रश्नगत विधि सूची 3 के विषयों में से किसी एक विषय के सम्बन्ध में होती है। शेष के लिए राज्यों की शक्ति उनके अपने क्षेत्र में उतनी ही अनन्य है जितनी कि संसद् की उसके आबंटित क्षेत्र के भीतर है। यह दलील कि कनेडियन ऐक्ट की धारा 91 का प्रथम भाग अनुच्छेद 248 के सदृश है और उसका दूसरा भाग अनुच्छेद 246 (1) के सदृश है और इसलिए उस ऐक्ट की धारा 91 और 92 पर जो विनिश्चय किए गए हैं वे हमारे संविधान में शक्तियों के वितरण के अर्थान्वयन के प्रयोजन के लिए लागू होते हैं; इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

120. यह सच है कि **सुब्रामणियन** बनाम **मुथुस्वामी**(1) में रिपोर्ट के पृष्ठ 200 पर मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने कनाडा ऐक्ट के बारे में यह बात कही थी कि उसमें इसी प्रकार के उपबन्ध थे जबकि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 100 अधिनियमित की गई थी। किन्तु संदर्भ से यह स्पष्ट है कि ये मत विधायी शक्तियों की अतिव्याप्ति और उस आकस्मिकता में केन्द्रीय विधि की प्रमुखता के सम्बन्ध में व्यक्त किए गए थे न कि दोनों अधिनियमों में वितरण-स्कीमों के सम्बन्ध में किए गए थे। अत: वह विनिश्चय इस प्रस्थापना के लिए नज़ीर नहीं है कि 1935 के ऐक्ट की धारा 100 और कनेडियन ऐक्ट, 1867 की धारा 91 और धारा 92 के बीच कोई सादृश्य है। निस्सन्देह रिपोर्ट के पृष्ठ 200 पर न्यायाधिपति ने 'परस्पर अनन्य शक्तियों की दो सूचियों' के बारे में कुछ कहा था जिसका कनाडा की शक्तियों के साथ जोड़े जाने में भेद बताया गया था। ऐसा इसलिए था क्योंकि 1935 के ऐक्ट के अधिनियमित होने से सम्बन्धित पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार ने यह इच्छा प्रकट नहीं की थी, जैसा कि कनेडियन ऐक्ट के सम्बन्ध में किया गया था, कि 'एक ऐसा संविधान होना चाहिए जो सिद्धान्तत: यूनाइटेड किंगडम के समान हो'। सर सैम्युल होरे के, जिन्होंने 1935 का कांस्टीट्यूशन बिल संसद में रखा था, धारा 104 के तत्समान प्रारूप धारा पर भाषण से स्पष्टतया यह दर्शित होता है कि विधायी शक्तियों के वितरण के सम्बन्ध में भारत में दलों के बीच काफी संविवाद था। उसी संविवाद के कारण तीन सूचियां बनानी पड़ीं 'उनमें से हर एक इतनी सांगोपांग है जितनी कि हम बना सकते थे, इतनी सांगोपांग हैं कि अवशिष्ट क्षेत्र के लिए बहुत थोड़ा या कुछ भी नहीं छोड़ा गया है और इसलिए 'अवशिष्ट क्षेत्र के भीतर जो कुछ भी जाने की सम्भावना है वे सम्भवत: ऐसे अज्ञात क्रियाकलाप के क्षेत्र हैं जिन्हें न तो मेरे माननीय मित्र

(1) (1940) एफ० सी० आर० 188.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

और न ही मैं इस समय अनुध्यात कर सकते हैं।' (एन० राजगोपाल आय्यंगर की पुस्तक गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 के पृष्ठ 133 पर उद्धृत)।

121. मुख्य न्यायाधिपति ग्वायर ने केवल एक वर्ष पहले अन्य संविधानों के सम्बन्ध में दिए गए विनिश्चयों को 1935 के गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के उपबन्धों को लागू करने के विरुद्ध निम्नलिखित शब्दों में वस्तुत: चेतावनी दी थी—

> "× × ×ऐसे बहुत थोड़े से विषय हैं जिन पर अन्य न्यायालयों के विनिश्चयों से यह अपेक्षित है कि उन्हें फेडरल और प्रान्तीय शक्तियों से अधिक सतर्कता से व्यवहार में लाया जाएगा क्योंकि अन्तिम विश्लेषण करने में विनिश्चय संविधान के उन शब्दों पर निर्भर करना चाहिए जिन पर न्यायालय निर्वचन कर रहा हो; और चूंकि किन्हीं भी दो संविधानों के निबन्धन एक समान नहीं होते हैं इसलिए यह उपधारणा करना बहुत ही खतरनाक होगा कि उनमें से एक का विनिश्चय दूसरे के बारे में किसी प्रतिबन्ध के लागू किया जा सकता है। ऐसा वहां भी हो सकता है जहां उपयोग किए गए शब्द या अभिव्यक्तियों दोनों मामलों में एक ही हों, क्योंकि किसी शब्द या पद का अर्थ उसके संदर्भ के अनुसार हो सकता है या तदनुसार उसके भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं।"

मद्रास प्रान्त बनाम **मैसर्स बोद्दु पायदाना एण्ड सन्स** (1) में फेडरल न्यायालय ने उत्पादशुल्क और विक्रय कर के सम्बन्ध में केन्द्र और प्रान्तों की कराधान की शक्तियों पर विचार-विमर्श करते हुए कनाडा के और भारतीय ऐक्टों में शक्तियों के वितरण के बीच अन्तर बतलाया—

> "किसी अविनिर्दिष्ट अवशिष्ट शक्ति के सम्बन्ध में किसी अभिव्यक्त शक्ति की परिधि पर विचार करते समय पश्चात्वर्ती के जोखिम पर पूर्ववर्ती का व्यापक निर्वचन करना काफी स्वाभाविक है; और निस्सन्देह यही वह सिद्धान्त है जिस पर जूडीशियल कमेटी ने ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की धारा 91 और 92 का अनेक बार निर्वचन किया है। लेकिन वहां मामला कुछ भिन्न होता है, जैसा कि भारतीय ऐक्ट में है, जहां दो अनुपूरक शक्तियां होती हैं, जिनमें से हर एक संक्षिप्त और निश्चित निबन्धनों में अभिव्यक्त होती है।"

माणिक्कसुन्दर भाट्टार बनाम **नायडू** (2) में फेडरल न्यायालय ने एक बार फिर चेतावनी के वैसे ही शब्द कहे थे और यह मत व्यक्त किया था कि 1935 के ऐक्ट की धारा 104 की दृष्टि से, जिसमें अभिव्यक्त रूप से अवशिष्ट शक्ति के बारे में उपबन्ध किया गया है, प्रिवी काउन्सिल द्वारा प्रतिपादित कनाडा का वह सिद्धान्त भारतीय ऐक्ट को लागू करना असम्भव होगा कि शक्ति के लिए प्रान्तीय सूची पर नजर डालनी होगी और यदि वह वहां न हो तो उसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह डोमीनियन की शक्ति के साधारण पूल में है—

> "कनेडियन कान्स्टीच्यूशन ऐक्ट में विधान के लुप्त विषयों के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध नहीं है। हर एक विषय के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना

(1) (1942) एफ० सी० आर० 90, 105.
(2) (1946) एफ० सी० आर० 67, 87-88.

चाहिए कि वह या तो डोमीनियन संसद् की या प्रान्तीय विधानमण्डलों की विधायी शक्तियों के अन्तर्गत आता है। भारतीय संविधान में धारा 104 सप्तम् अनुसूची की तीनों सूचियों से लुप्त विषयों के सम्बन्ध में विधान अधिनियमित करने के प्रयोजन के लिए ही अन्त:स्थापित की गई है।"

इन वक्तव्यों से स्पष्टतया (क) शक्ति के वितरण की दोनों पद्धतियों के बीच अन्तर और (ख) हमारे संविधान को कनाडा के उदाहरणों को लागू करने के खतरे का संकेत मिलता है। चूंकि विद्यमान् संविधान, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा बार-बार कहा गया है, 1935 के ऐक्ट के उपबन्धों पर कई प्रकार से आधारित है, विशिष्टतया विधायी शक्तियों के वितरण के विषय में। इसलिए जो कुछ उस ऐक्ट के बारे में कहा गया है वह समान रूप से संविधान को लागू होना चाहिए।

122. अब हम अनुच्छेद 248 पर विचार करेंगे। इस बात पर दो राय नहीं हो सकतीं कि वह अनुच्छेद अवशिष्ट शक्ति के सम्बन्ध में है और यह कि वह शक्ति उस अनुच्छेद द्वारा न कि सूची 1 की प्रविष्टि 97 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्र शक्ति है। यह सुव्यवस्थापित है कि तीनों सूचियों की प्रविष्टियां स्वयं कोई शक्ति प्रदत्त नहीं करती हैं। लेकिन वे प्रविष्टियां ऐसे क्षेत्र अंकित करती हैं, जिनमें संविधान के सुसंगत उपबन्धों द्वारा विधानमण्डलों पर उनकी शक्तियों प्रदत्त की जाती हैं।

123. संविवाद अनुच्छेद 248 के अधीन शक्ति के विस्तार के सम्बन्ध में है। संघ के काउन्सेल ने इस तथ्य का लाभ उठाया कि अनुच्छेद सूची 3 या सूची 2 में अप्रगणित विषय के सम्बन्ध में संसद् की अनन्य शक्ति के बारे में है और वह उन दोनों सूचियों में से किसी में भी अवर्णित कोई कर विधि द्वारा अधिरोपित करता है। यह सच है कि उस अनुच्छेद में सूची 1 के बारे में कुछ नहीं कहा गया है; दूसरे शब्दों में अभिव्यक्त निबन्धनों में उसमें यह नहीं कहा गया है कि वह शक्ति उन तीनों सूचियों में से किसी में प्रगणित या वर्णित विषयों के करों के सम्बन्ध में ही है। किन्तु जब कोई अवशिष्ट शक्ति की बात करता है तो एकदम प्रश्न यह उठता है कि वह किस की अवशिष्ट शक्ति है? उस अनुच्छेद के पार्श्व-टिप्पण में यह कथित किया गया है कि प्रदत्त शक्ति अवशिष्ट शक्ति है। जब कभी किसी उपबन्ध के सही अर्थ के बारे में संदिग्धता या सन्देह हो तो पार्श्व-टिप्पण मार्ग-दर्शक के रूप में कार्य कर सकता है। जैसे कि पहले कथित किया जा चुका है कि अनुच्छेद 246(1) में संघ विधानमण्डल को जो अनन्य शक्ति दी गई है वह निश्चित रूप से उस अनुच्छेद में उपबन्धित विषयों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 248 द्वारा पुन: प्रदान नहीं की जा सकती। अत: यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 248 द्वारा प्रदत्त अवशिष्ट शक्ति से वह शक्ति अभिप्रेत है जो उन विषयों के सम्बन्ध में है जिन पर अनुच्छेद 246 में विचार नहीं किया गया है और वह तीनों सूचियों में से किसी में नहीं पायी जाती है।

124. इस सम्बन्ध में श्री सीतलवाड ने स्वयं हमारे समक्ष सूची 1 की प्रविष्टि 91 पर (जोकि सूची 1 की वर्तमान प्रविष्टि 97 के बराबर है) संविधान सभा में हुई डिबेट की ओर संकेत किया है कि वह निदेशात्मक है और उसमें वह पृष्ठभूमि दर्शित की गई है जिसमें और जिस प्रयोजन के लिए वह प्रविष्टि सूची 1 में अन्त:स्थापित की गई थी। जब वह प्रविष्टि सदन के सामने आई तब सरदार हुकुम सिंह और श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने यह

विचार किया कि यदि अनुच्छेद 231(वर्तमान अनुच्छेद 248 के बरार) से यह अभिप्रेत है कि सभी शक्तियां, जो सूची 2 और 3 में अन्तर्विष्ट नहीं हैं, केन्द्र में निहित हैं तो सूची 1 में शक्तियों का प्रगणन तथा उसकी अन्तिम प्रविष्टि 91 बिल्कुल व्यर्थ हैं। सरदार हुकुम सिंह ने यह भी संकेत किया कि उस प्रविष्टि में 'विषय' शब्द के पूर्व 'अन्य' शब्द अनावश्यक है। श्री नज़रुद्दीन अहमद ने यह मत व्यक्त किया कि—'यदि हर एक ऐसा विषय, जो सूची 2 या सूची 3 में वर्णित नहीं हैं, केन्द्र को जाना है तब सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 90 की प्रगणना करने की क्या बात है'। ऐसा अर्थान्वयन उस अर्थान्वयन के समान है जो श्री सीतलवाड ने हमारे समक्ष किया है अर्थात् सूची 2 की ओर ही देखने की आवश्यकता है और यदि प्रश्नगत शक्ति उसमें नहीं है तो उस शक्ति के बारे में यह धारणा की जानी चाहिए कि वह अनुच्छेद 248 के कारण केन्द्र के पास है। श्री नज़रुद्दीन ने जिस बात के बारे में कहा था उस पर प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना द्वारा एकदम आपत्ति की गई थी। श्री सक्सेना ने यह कहा कि श्री नज़रुद्दीन का दृष्टिकोण ठीक नहीं है क्योंकि 'डाक्टर अम्बेडकर ने यह कहा है कि यदि कोई विषय रह गया है तो उसे प्रविष्टि 91 में शामिल कर लिया जाएगा। इससे यह अभिप्रेत है कि यदि तीनों सूचियों में शक्तियों के प्रगणन में विधान का कोई विषय रह जाता है तो ऐसा विषय केन्द्र पर प्रदत्त अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत आएगा। इसके बाद डाक्टर अम्बेडकर ने, सूची 1 की प्रविष्टि 91 अन्त:स्थापित क्यों की गई थी, उसके प्रयोजन को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि वह प्रविष्टि सूची 1 की सीमा और प्रविषय की परिभाषा करने के लिए रखी गई है। उन्होंने यह बताया कि यह बात दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है—(1) सूची 1 का प्रविषय परिभाषित करके प्रविष्टि 91 को रखकर, या (2) प्रविष्टि 91 में निम्नलिखित शब्द जोड़कर सूची 2 और 3 के प्रविषय की परिभाषा करके—

"कोई ऐसी बात जो सूची 2 या सूची 3 में शामिल न की गई हो।"

उन्होंने आगे यह कहा कि जब अनुच्छेद 223(वर्तमान अनुच्छेद 248 के बराबर) में यह उपबन्धित किया गया है कि सूची 3 या सूची 2 में अप्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में संसद् को अनन्य शक्ति है तब सैद्धान्तिक रूप से सूची 1 में कोटियों को प्रगणित करना अनावश्यक होगा। "ऐसा क्यों किया गया है इसका कारण यह है कि बहुत से राज्यों के लोग विशिष्टतया देशी राज्यों के लोग संविधान सभा के प्रारम्भ में ही विशेष रूप से यह जानना चाहते थे कि केन्द्र की विधायी शक्तियां क्या हैं? वे स्पष्टतया और विशिष्टतया जानना चाहते थे। वे यह कह देने से सन्तुष्ट नहीं होते थे कि केन्द्र को केवल अविशिष्ट शक्तियां ही प्राप्त होंगी। प्रांतों के अनुदेशों और देशी राज्यों के अनुदेशों का निराकरण करने के लिए हमें यह विशिष्ट रूप से बताना पड़ा कि प्रतीकात्मक उक्ति 'अवशिष्ट शक्तियों' में क्या शामिल है। यही कारण है कि हमें यह श्रम क्यों करना पड़ा, इस बात के होते हुए भी कि हमारे पास अनुच्छेद 223 है।" इसके कुछ देर पश्चात् उन्होंने यह स्पष्ट किया कि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 104 की वही स्कीम है और वह धारा अनुच्छेद 223 के समान है। इस भाषण से यह संकेत मिलता है कि प्रविष्टि 91 को अन्त:स्थापित करने का प्रयोजन केन्द्र पर प्रदत्त अवशिष्ट शक्तियों के प्रविषय को परिभाषित करना था और वह यह था कि केन्द्र को न केवल पूर्ववर्ती प्रविष्टियों में प्रगणित विषयों पर बल्कि सूची 2 और 3 में अप्रगणित विषयों पर भी अनन्य शक्ति

प्राप्त होनी थी । (कांस्टीट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स खंड 9 पृष्ठ 855, 857)। तारीख 5 जुलाई, 1947 वाली यूनियन पावर्स कमेटी की, जिसके अध्यक्ष पंडित नेहरू थे, दूसरी रिपोर्ट अधिक निदेशात्मक है। उस रिपोर्ट में यह कथित किया गया है कि जब कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास होनी चाहिए' 'हमारे द्वारा तैयार की गई तीनों सूचियों की सांगोपांग प्रकृति की दृष्टि से अवशिष्ट विषय केवल ऐसे विषयों से सम्बन्धित हो सकते हैं जिन्हें हो सकता है कि भविष्य में मान्यता प्राप्त हो जाए, वर्तमान स्थिति में पहचाना नहीं जा सकता और इसलिए उन्हें अब सूचियों में शामिल नहीं किया जा सकता।' सर गोपालस्वामी आय्यंगर ने 20 अगस्त, 1947 को इस रिपोर्ट को प्रस्तुत करते हुए अपने भाषण में भी यह कहा कि 'तीन सांगोपांग सूचियां' बताने के पश्चात् यदि कुछ बाकी बच जाता है, यदि भविष्य में ऐसा कोई विषय उठ खड़ा होता है जिसे उन तीनों सूचियों में से किसी में भी शामिल नहीं किया जा सकता तो उस विषय के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह केन्द्र के पास रहता है × × । (बी० शिवराव, फ्रेमिंग ऑफ इण्डियाज कांस्टीट्यूशन, खंड 2, पृष्ठ 867 और उससे आगे)। अतः इस विचार-विमर्श से जो बात निकलती है वह यह है कि अनुच्छेद 248 में जो अवशिष्ट शक्ति रखी गई है वह उन विषयों के सम्बन्ध में है जिनका पूर्वानुमान या अनुध्यान नहीं किया जा सका जब कि तीनों सूचियों की विरचना की गई थी और इसलिए उन्हें उस समय उन सूचियों में से किसी में भी शामिल नहीं किया जा सका।

125. लेकिन श्री सीतलवाड ने केन्द्र की अवशिष्ट शक्तियों पर डिबेट के दौरान श्री कृष्णामचारी के भाषण का अवलम्बन किया। उस अवसर पर अन्य व्यक्तियों ने उस संदर्भ में क्या कहा था—इसका अच्छी प्रकार अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 के विरुद्ध कुछ सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त आशंकाओं का समाधान करने के लिए किया गया था। जिन प्रस्थापनाओं के लिए उन्होंने प्रयास किया वे ये थीं—(क) कि 1935 के कांस्टीट्यूशन ऐक्ट की सर्वोत्तम बातों में से एक बात प्रोफेसर व्हीवर के अनुसार. सप्तम् अनुसूची में शक्तियों का प्रगणन है; (ख) यह कि ऐसा कर देने से अवशिष्ट शक्तियों के लिए उपबन्ध करना आवश्यक हो गया और (ग) सूचियां 'लगभग पूर्ण और सांगोपांग' हैं इसलिए अवशिष्ट शक्तियों की अन्तर्वस्तु में कुछ अधिक नहीं रह गया है। लेकिन उन्होंने यह कहा कि एक सम्भव उपयोग जिसके लिए अवशिष्ट शक्ति का उपबंध भविष्य में किया जा सकता है, यह होगा कि कृषि भूमि पर पूंजी उद्ग्रहण अधिरोपित किया जाय, किन्तु यदि ऐसा कर दिया जाता है तो उन्होंने सोचा कि केन्द्र उसके आगम राज्यों को समनुदिष्ट कर देगा, जैसे कि सभी विषय, जिनके बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि वे कृषि से सहबद्ध हैं, राज्यों को आबंटित किए जाते हैं। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 'मेरा विचार है कि अवशिष्ट शक्तियों का निहित किया जाना आज केवल सैद्धान्तिक महत्व की बात ही है'। निस्संदेह यह सच है कि उन्होंने अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन कृषि भूमि पर पूंजी उद्ग्रहण अधिरोपित करने के लिए अवशिष्ट शक्ति के भविष्य में सम्भव उपयोग के प्रति अपनी व्यक्तिगत राय अभिव्यक्त की थी। किन्तु उन्होंने सूचियों की अन्य प्रविष्टियों पर, जैसे कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 या सूची 2 की प्रविष्टि 49 तथा अवशिष्ट शक्ति पर आघात या महत्व के प्रति कोई निर्देश नहीं किया है। न ही उस डिबेट से यह दर्शित होता

है कि किसी अन्य सदस्य ने उनके सुझाव पर विचार-विमर्श किया या सहमति प्रकट की। अतः यह बताना सम्भव नहीं है, जैसे कि श्री सीतलवाड ने प्रयत्न किया है, कि सभा में कोई मतैक्य था या उसके सदस्यों को इस बात का ज्ञान था कि अवशिष्ट शक्तियों का भविष्य में ऐसे कर के लिए, जैसा कि यहां पर आक्षेपित है, उपयोग किया जा सकता है (कांस्टीट्यूएण्ट असैम्बली डिबेट्स खण्ड 2, पृष्ठ-838-839, 952, 954)।

126. अब प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित अधिनियम अनुच्छेद 248 के अधीन शक्ति के अनुसरण में है? यदि वह अनुसूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है तो वह अनुच्छेद 248 या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत नहीं आ सकता। दलील यह दी गई थी कि चूंकि सूची 1 की प्रविष्टि 86 कृषि भूमि को छोड़कर आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर के सम्बन्ध में है इसलिए आक्षेपित कर, जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, ऐसा विधान नहीं है जो प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है बल्कि वह अनुच्छेद 248 (2) और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है। श्री शीतलवाड ने एक ऐसे विनिर्दिष्ट प्रश्न का, जो उनसे पूछा गया था, उत्तर देते हुए यह कहा कि कृषि भूमि को वर्जित करके आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति विधान का क्षेत्र है और वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है जब कि ऐसा की कर, जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, अधिरोपित करने की शक्ति विधान का एक अन्य सुभिन्न क्षेत्र है और वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 (2) के अन्तर्गत आता है। उन्होंने कहा कि ऐसा होने के कारण धन कर अधिनियम, जैसा कि वह वित्त अधिनियम, 1969 द्वारा संशोधित किया गया था, अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत आता है।

127. हम स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हैं कि हम इस दलील को मानने में असमर्थ हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि धन-कर अधिनियम, जब वह 1957 में पारित किया गया था, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता था किन्तु वह ऐसा नहीं रहा जब कि सन् 1969 में उसके क्षेत्र में कृषि भूमि को शामिल करके उसका संशोधन किया गया था? कर की विषय-वस्तु, प्रकृति और भार वही रहा, संशोधन से जो एकमात्र अन्तर हुआ वह किसी निर्धारिती की आस्तियों के मूलधन मूल्य की संगणना करने में कृषि भूमि को शामिल कर लिया जाना था। हमारी राय में अधिनियम का, उसके संशोधित कर दिए जाने के पश्चात् भी, मूल स्वरूप बना रहा और वह सूची 1 की प्रविष्टि 86 के साथ पठित अनुच्छेद 246 (1) के अन्तर्गत आता रहा। सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन विधान का क्षेत्र निस्सन्देह इस भाव में निर्बन्धित है कि उसमें अनुध्यात कर अधिरोपित करने वाली विधि अपने क्षेत्र में कृषि भूमि को शामिल नहीं कर सकती। किन्तु इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि ऐसे कर के सम्बन्ध में शक्ति उस प्रविष्टि के अन्तर्गत नहीं आती है या यह कि जो कुछ नीति के तौर पर और शक्ति के वितरण की स्कीम द्वारा प्रत्याहृत किया गया था वह एक सुभिन्न शक्ति है और इसलिए वह अनुच्छेद 248 और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आती है।

128. संविधान निर्माताओं के लिए यह कोई विशेष बात नहीं है कि किसी विशिष्ट विषय या विषयों पर निर्बन्धित विधायी शक्ति प्रदत्त करें। प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने ऐसी

निर्बन्धित शक्ति के नमूने के तौर पर सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3 की ओर हमारे समक्ष संकेत किया। पहली प्रविष्टि तीन आधारों पर अर्थात् भारत की प्रतिरक्षा, विदेशी कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों पर निवारक निरोध के लिए उपबन्ध करने के लिए विधि बनाने की शक्ति के सम्बन्ध में है। दूसरी प्रविष्टि में तीन अन्य आधारों अर्थात् राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने से और समुदाय के लिए अत्यावश्यक सम्भरणों और सेवाओं को बनाए रखने से सुसंगत कारणों के लिए उसी शक्ति का उपबन्ध किया गया है। दोनों प्रविष्टियों को एक साथ पढ़ने से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि निवारक निरोध के विषय में नीति के रूप में संविधान में ऐसे निर्बन्धित क्षेत्र का उपबन्ध किया गया है जिसके भीतर शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् उन दोनों सूचियों में उपवर्णित छह कारणों से ही उपयोग किया जा सकता है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है यदि संघ के काउन्सेल ने ठीक कहा है तो संघ निवारक निरोध के सम्बन्ध में उन आधारों से भिन्न, जोकि उन दोनों सूचियों में विनिर्दिष्ट किए गए हैं, इस आधार पर विधि बनाने की शक्ति का दावा कर सकता है उसे अनुच्छेद 248 और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन अवशिष्ट शक्ति प्राप्त है। 'पण्डित नेहरू के शब्दों के अनुसार निश्चित रूप से विधान का क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसका पूर्वानुमान नहीं किया गया था या जिस पर पहले सोचा नहीं गया था या वह 'पहचानने योग्य' नहीं था जिसके लिए अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 अधिनियमित की गई थी। सूची 1 की प्रविष्टि 86 एक ऐसा और उदाहरण है जिसमें निर्बन्धित विधायी शक्ति का उपबन्ध किया गया है ऐसा सम्भवतः इसलिए किया गया है क्योंकि संविधान में शक्तियों के वितरण के अधीन कृषि और कृषि भूमि का क्षेत्र लगभग पूर्णतया राज्यों को न्यस्त किया गया है। ऐसे निर्बन्धन के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह एक प्राक्कलित नीति के परिणामस्वरूप है क्योंकि हमारे जैसे देश में कृषि भूमि अत्यधिक बड़ी आस्ति होगी और उससे कर की बहुत बड़ी रकम प्राप्त हो सकती है। जिन्होंने प्रविष्टि 86 से ऐसी आस्ति को अपवर्जित किया है और उसके ऊपर शक्ति राज्यों को दी है, सम्भवतः उन्होंने इस बारे में यह नहीं सोचा था कि अनुच्छेद 248(2) के अधीन संघ की अवशिष्ट शक्ति में कर की ऐसी अपवर्जित मद को शामिल किया जाए। ये कारण हमें विवश करते हैं कि हम इस दलील को नामंजूर कर दें कि कृषि भूमि के मूलधन मूल्य पर कर अवशिष्ट शक्ति के अन्तर्गत आता है या यह कि यह विधान का ऐसा क्षेत्र है जो उससे भिन्न है जिस पर प्रविष्टि 86 में विचार नहीं किया गया है या यह कि इसलिए संशोधन अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आता है।

129. इस दृष्टिकोण से हम संघ की ओर से दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। हमारी राय है कि संशोधन अधिनियम सूची 1 की प्रविष्टि 86 न कि अनुच्छेद 248 और/या सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित अधिनियम में, सूची 1 की प्रविष्टि 86 में निर्बन्धित क्षेत्र के कारण, विधायी सक्षमता की कमी है। परिणामतः उच्च न्यायालय का बहुमत निर्णय कायम रखा जाना चाहिए और अपील खारिज की जानी चाहिए। तदनुसार हम आदेश देते हैं किन्तु अपील में अन्तर्वलित विवाद्यकों के अत्यधिक महत्व की दृष्टि से हम यह न्यायोचित समझते हैं कि खर्चे के बारे में कोई आदेश न दिया जाए।

1971(10) eILR(PAT) SC 1

न्यायाधिपति मित्तर—

130. यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध की गई है। उस मामले में एक के मुकाबले में चार न्यायाधीशों के बहुमत द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वित्त अधिनियम, 1969 की धारा 24, जिसके द्वारा धन-कर अधिनियम, 1957 (1957 का 27) में 'शुद्ध धन' की परिभाषा को शुद्ध धन की संगणना के प्रयोजन के लिए आस्तियों में कृषि भूमि को शामिल करके संशोधन किया गया था, संसद् की सक्षमता के बाहर है और ऐसा होने के कारण संविधान के शक्ति-बाह्य है।

131. न्यायाधीशों के बहुमत का कारण यह था कि संविधान की सप्तम् अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा कृषि भूमि पर धन-कर अधिरोपित करने की शक्ति संसद् की सक्षमता से प्रत्याहृत कर ली गई थी। अतः संसद् उक्त सूची की प्रविष्टि 97 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसा उपाय अधिनियमित नहीं कर सकता था यद्यपि प्रत्यर्थी की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष ये तर्क दिए गए थे कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 राज्य को कृषि भूमि पर कर अधिरोपित करने के लिए सशक्त करती है तथापि उच्च न्यायालय के समक्ष इस दलील को अन्ततोगत्वा छोड़ दिया गया था। न्यायाधीशों के बहुमत के अनुसार—

> "आक्षेपित विधान प्रभाव सारतः कृषि भूमि सहित आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करना है। अतः वस्तुतः प्रविष्टि 86 में प्रतिषेधात्मक शब्दों अर्थात् 'कृषि भूमि को छोड़कर' के बारे में यह माना गया है कि वे विद्यमान् नहीं हैं। ऐसा करके संसद् ने उन परिसीमाओं के बाहर कार्य किया है जिनके भीतर संसद् को विधान करने की सक्षमता है।"

पांचवें न्यायाधीश के अनुसार—

> "राज्य विधानमण्डल को प्रविष्टि 49 के अधीन किसी व्यष्टि की कृषि भूमि के रूप में आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की कोई शक्ति नहीं है और चूंकि संसद् के रास्ते में ऐसा कर अधिरोपित करने वाली विधि बनाने के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है इसलिए विधान को चुनौती नहीं दी जा सकती।"

132. प्रश्न के अत्यधिक महत्व और 1969 के संशोधन के गहरे परिणामों की दृष्टि से यह अपील सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष रखी गई थी और दोनों पक्षकारों की ओर से, विशेषतया प्रत्यर्थियों की ओर से जो तर्क दिए गए थे वे बहुत विस्तृत और व्यापक थे और उनके अन्तर्गत यह विषय भी था कि क्या संसद् और राज्यों की विधायी सक्षमता है और संविधान की सप्तम् अनुसूची की प्रथम दो सूचियों में विधान के शीर्षकों का निर्वचन उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट, 1867 की तत्समान धारा 91 और 92 के उपबन्धों का किया जाता है।

133. अपीलार्थी की ओर से श्री सीतलवाड ने निम्नलिखित प्रस्थापनाएं पेश कीं—

(1) इस अपील के अवधारित करने के लिए वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित कर सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 की परिधि के

अन्तर्गत आता है और यदि उसके अन्तर्गत आता है तो इसके आगे कोई और प्रश्न नहीं उठेगा और प्रत्यर्थी सफल होने के लिए हकदार होगा। किन्तु यदि वह कर प्रविष्टि 49 की परिधि के अन्तर्गत नहीं पाया जाता है तो संसद् ऐसा कर अधिरोपित करने के लिए सक्षम होगा।

(2) अधिरोपण की सही प्रकृति अवधारित करने के लिए हमें कर के सार या आवश्यक स्वरूप पर विशेषतया कराधान के यूनिट के प्रति निर्देश से विचार करना चाहिए।

(3) सूची 2 की प्रविष्टि 49 में पृथक् यूनिटों के रूप में भूमियों और भवनों पर कराधान अनुध्यात है। प्रविष्टि में किसी व्यक्ति द्वारा एक यूनिट के रूप में धृत सभी भूमियों, चाहे वे कृषि भूमियां हों या अन्यथा और भवनों का संकलन अनुध्यात नहीं है और परिणामस्वरूप राज्य विधानमण्डल ऐसे संकलन पर कर अधिरोपित करने के लिए सक्षम नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रविष्टि में ऐसा कर अनुध्यात नहीं है जो विधानमण्डल को उन दायित्वों की कटौती के लिए अनुज्ञा देगा जिनके अध्यधीन सम्पत्ति का स्वामी हो सकता है। धन-कर अधिनियम में यथा वर्णित शुद्ध धन के रूप में कराधान के प्रयोजन के लिए यूनिट सूची 2 की प्रविष्टि 49 द्वारा अनुध्यात नहीं है।

(4) संविधान के भाग 11 के विभिन्न उपबन्धों द्वारा विधायी शक्ति संघ संसद् और राज्य विधानमण्डलों के बीच वितरित की गई है। शक्ति में प्रयोग करने के उद्देश्य अर्थात् सभी विधान की विषय-वस्तु सप्तम अनुसूची की तीनों सूचियों के भीतर समाविष्ट है। सूची 1 में प्रगणित प्रविष्टियां वे विषय उपवर्णित करती हैं जो संसद् द्वारा विधान करने की अनन्य शक्तियों के अन्तर्गत आते हैं और यह अनुच्छेद 246 के खण्ड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी है। किसी राज्य के विधानमण्डल की अनन्य शक्ति, जो सूची 2 में प्रगणित विषयों के सम्बन्ध में है, अनुच्छेद 246 के खण्ड (1) और (2) के अध्यधीन है।

(5) संसद् को उपर्युक्त रूप में जो विधायी शक्ति प्रदान की गई है उसे अनुच्छेद 248 द्वारा बढ़ाया गया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन संसद् को किसी ऐसे विषय के बारे में जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है और खण्ड (2) के आधार पर ऐसी शक्ति के अन्तर्गत ऐसे करों के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं हैं, अधिरोपण के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति भी है। इसका परिणाम यह है कि यदि कोई ऐसा विषय या कर है, जो यद्यपि सूची 1 की मदों में से किसी भी मद में अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं है, उसे सूची 2 या सूची 3 में शामिल नहीं किया गया है तथापि वह एक ऐसा विषय है जिस पर केवल संसद् ही विधान करने के लिए सक्षम है।

(6) इस न्यायालय के विनिश्चयों के आधार पर अग्रसर होते हुए कि शुद्ध धन पर कर सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि उस प्रविष्टि के अधीन विधान का शीर्षक इस प्रकार था—'आस्तियों में से कृषि भूमि को छोड़ कर, उनके मूलधन मूल्य पर कर' क्योंकि कृषि भूमि पर शुद्ध

धन सूची 2 की किसी भी प्रविष्टि की विषय-वस्तु नहीं हो सकता; कृषि भूमि को मिला कर शुद्ध धन के कराधान के विषय पर विधान अनुच्छेद 248 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आएगा।

(7) संविधान का मूल सिद्धान्त यह है कि कोई ऐसा विषय नहीं होना चाहिए जो संघ संसद् के हाथों में या राज्य विधानमण्डलों के हाथों में विधान के प्रविषय के बाहर हो। संविधान में शक्ति रिक्तता (पावर वैक्यूम) की बात नहीं सोची गई है।

(8) सूची 1 की प्रविष्टि 86 के 'कृषि भूमि को छोड़ कर' शब्दों को इस प्रकार नहीं पढ़ा जाना चाहिए कि वे संसद् को ऐसी आस्तियों के, जो कृषि भूमि के सम्बन्ध में है, मूलधन मूल्य पर कर लगाने से प्रतिषिद्ध करते हैं। इन शब्दों को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए कि वे अपवर्जन करने वाले शब्द हैं। दूसरे शब्दों में 'कृषि भूमि को छोड़कर' शब्दों का प्रयोग किए बिना संसद् ने कृषि भूमियों के प्रति किसी निर्देश को लुप्त करते हुए सभी प्रकार की ज्ञात आस्तियों को प्रविष्टि में विनिर्दिष्ट किया होता। इस प्रकार निर्वचन करने से संसद् पर अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 के संयुक्त प्रवर्तन द्वारा आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने पर किसी प्रतिषेध का प्रश्न ही नहीं होगा।

134. सूची 1 की प्रविष्टि 97 से यह अभिप्रेत है कि उसमें ऐसे सभी विषय समाविष्ट हैं जो सूची 2 या सूची 3 में नहीं पाए जाते हैं और उनके अन्तर्गत कोई ऐसा कर आता है जो उन दोनों सूचियों में वर्णित नहीं किया गया है। प्रविष्टि 97 वस्तुत: अनुच्छेद 248(1) की अनुपूरक हैं।

135. भारतीय संविधान में अपनाए गए विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में विधायी शक्ति के वितरण की स्कीम ब्रिटिश नार्थ अमरीका ऐक्ट की धारा 91 और 92 से बहुत मिलती जुलती है और उन दोनों धाराओं पर प्रिवी काउन्सिल की जूडिशियल कमेटी के विनिश्चय इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न पर काफी प्रकाश डालते हैं।

136. श्री पालखीवाला द्वारा प्रस्तुत की गई प्रस्थापनाएं इस प्रकार हैं—

(1) कृषि भूमि पर धन-कर उद्गृहीत करने की शक्ति संघ सूची की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 के अन्तर्गत नहीं आती है। संविधान के अधीन कृषि भूमियों के मूलधन मूल्य पर प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: कोई कर उद्गृहीत करने की शक्ति संघ को नहीं दी गई है।

(2) **सुधीर चन्द्र नॉन बनाम धनकर आफिसर**(1), **नगर भूमि कर सहायक आयुक्त, मद्रास बनाम बकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड** (2) और **श्री पृथ्वी काटन मिल्स लिमिटेड बनाम बड़ोच बरो नगरपालिका**(3) में इस न्यायालय

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969)1 एस० सी० आर० 108.

(2) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.

(3) (1970) 2 उम० नि० प० 302=(1970) 1 एस० सी० आर० 388.

के निर्णयों से यह दर्शित होता है कि—

(क) भूमियों और भवनों पर प्रत्यक्ष कर सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आता है जबकि कुल आस्तियों पर, जिनके अन्तर्गत भवन और कृषि भूमियां आती हैं, कर संघ सूची की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है;

(ख) प्रविष्टि 49 के अधीन कर भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य पर उद्गृहीत किया जा सकता है जैसे कि प्रविष्टि 86 के अधीन अन्य आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर उद्गृहीत किया जा सकता है;

(ग) प्रविष्टि 49 के अधीन ऐसा कर, जो भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य पर प्रत्यक्षतः कर है, उद्गृहीत करने की राज्य की शक्ति के अलावा संघ संसद् को प्रविष्टि 86 के अधीन उन आस्तियों के, जिन के अन्तर्गत भवन और कृषि भिन्न भूमियां आती हैं, मूलधन मूल्य पर कर अधिरोपित करने की शक्ति है ;

(घ) इसका परिणाम यह है कि जहां तक कृषि भिन्न भूमियों का सम्बन्ध है वे दो भिन्न-भिन्न करों, राज्य द्वारा भूमि कर और संघ द्वारा धन-कर या पूंजी उद्ग्रहण के अध्यधीन हो सकती हैं।

(3) संविधान में अभिव्यक्त रूप से कृषि भूमियों को इस दोहरे भार से अपवर्जित किया गया है। प्रविष्टि 86 के अभिव्यक्त शब्द पूंजी उद्ग्रहण या धन-कर के सम्बन्ध में विधान करने की संघ की शक्ति के प्रविषय को निर्बन्धित करते हैं।

(4) उक्त स्कीम उक्त दोनों सूचियों की अन्य प्रविष्टियों से स्पष्ट है।

(5) न तो संघ और न ही राज्य को किसी निर्धारिती के समस्त धन के, जिसके अन्तर्गत कृषि भूमियां आती हैं, कुल मूल्य के बारे में धन-कर उद्ग्रहण करने की शक्ति है जैसे कि न तो संघ को और न ही राज्य को कृषि आय सहित कुल आय के सम्बन्ध में आयकर उद्ग्रहण करने या मृत्यु पर कृषि भूमि सहित सम्पत्तियों के सम्बन्ध में सम्पदा शुल्क या उत्तराधिकार शुल्क उद्ग्रहण करने की शक्ति है।

(6) संविधान की स्कीम चूंकि संघ की विधायी शक्ति के क्षेत्र से कृषि भूमि को अपवर्जित करना है इसलिए इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता कि सूची 2 में कोई ऐसी प्रविष्टि नहीं है जो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के निबन्धनों के तत्समान हो।

(7) कृषि भूमि के सम्बन्ध में धन-कर संघ सूची की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत नहीं आएगा। प्रविष्टि के आरम्भिक ये शब्द 'कोई अन्य विषय' यह दर्शित करते हैं कि जो विषय प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 में विनिर्दिष्ट हैं वे प्रविष्टि 97 से उसी प्रकार अपवर्जित हैं जैसे कि सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित विषय।

(8) अनुच्छेद 248 का प्रविषय संघ सूची की प्रविष्टि 97 के प्रविषय से अधिक व्यापक नहीं है। यदि कोई विषय विनिर्दिष्टतया संघ सूची में प्रगणित किया गया है तो अनुच्छेद 248 ऐसे विषय पर लागू नहीं हो सकता और चूंकि

प्रविष्टि 86 में कृषि भूमि को छोड़कर आस्तियों पर धन कर का उद्ग्रहण अनुध्यात है इसलिए उन आस्तियों पर, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमि आती है, धन-कर प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत नहीं आ सकता।

(9) धन-कर का कृषि भूमियों तक विस्तार सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन राज्य की शक्ति का अतिक्रमण होगा। जहां तक कृषि भूमियों का सम्बन्ध है उन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कर सूची 2 की प्रविष्टि 97 में समाविष्ट हैं। यदि प्रविष्टि 49 को इस प्रकार पढ़ा जाए तो ऐसा विधान अधिनियमित करना संसद की सक्षमता के बाहर होगा जिसका प्रभाव आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि भूमियां आती हैं, मूल्य पर कर का उद्ग्रहण करना है।

137. धन-कर अधिनियम, 1957 में, जैसा कि वह 1969 के संशोधन के पूर्व था इस अपील के प्रयोजन के लिए सुसंगत निम्नलिखित उपबंध अंतर्विष्ट थे। धारा 2 (ङ) के अधीन आस्तियों के अन्तर्गत हर प्रकार की जंगम अथवा स्थावर सम्पत्ति आती है किन्तु इसके अन्तर्गत—

*"(i) कृषि भूमि और ऐसी भूमि पर उगती हुई फसलें, घास या खड़े हुए वृक्ष ;

(ii) किसी खेतिहर के या कृषि भूमि से लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता के स्वामित्व या अधिभोग में कोई भवन :

परन्तु यह तब जबकि वह भवन या उसी भूमि पर है या उसके ठीक निकट स्थित है और वह ऐसा भवन है जिसकी आवश्यकता खेतिहर लगान या राजस्व प्राप्तिकर्ता को उस भूमि से अपने सम्बन्ध के कारण निवास-गृह या भण्डार-गृह या वाह्य गृह के रूप में है;

(iii)
(iv) } सुसंगत नहीं हैं।
(v)

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

(i) agricultural land and growing crops, grass or standing trees on such land ;

(ii) any building owned or occupied by a cultivator or receiver or rent or revenue out of agricultural land :

Provided that the building is on or in the immediate vicinity of the land and is a building which the cultivator or the receiver of rent or revenue by reason of his connection with the land requires as a dwelling-house or a store house or an out-house ;

(iii)
(iv) } not relevant."
(v)

धारा 2 (ड) इस प्रकार है—

*" 'शुद्ध धन' से वह रकम अभिप्रेत है जिससे इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार संगणित ऐसी सब आस्तियों का, चाहे वे कहीं भी स्थित हों, जो मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती की हों, जिनके अन्तर्गत इस अधिनियम के अधीन उस तारीख को उसके शुद्ध धन में सम्मिलित किए जाने के लिए अपेक्षित आस्तियां आती है, संकलित मूल्य मूल्यांकन की तारीख को निर्धारिती के सभी ऋणों के संकलित मूल्य से अधिक है, जो निम्नलिखित से भिन्न है—

(i) वे ऋण जिन्हें धारा 6 के अधीन गणना में नहीं लिया जाना है;
(ii)
(iii) } सुसंगत नहीं हैं।"

धारा 3 प्रभावी धारा है और उसमें यह उपबंधित है कि—

**"इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए 1957 के अप्रैल के प्रथम दिन को और उससे प्रारम्भ होने वाले हर निर्धारण वर्ष के लिए हर व्यष्टि, हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब और कम्पनी के तत्सम्बन्धी मूल्यांकन की तारीख को शुद्ध धन पर कर (जिसे इसमें इसके पश्चात् धन-कर के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) अनुसूची में विनिर्दिष्ट दर या दरों पर प्रभारित किया जाएगा।"

138. धारा 4 के अधीन शुद्ध धन के अन्तर्गत उसमें विनिर्दिष्ट कुछ आस्तियां भी हैं। धारा 5 में किसी निर्धारिती द्वारा धृत कतिपय आस्तियों की छूट के लिए उपबन्ध किया गया है। उल्लेखनीय छूटें ये हैं—निर्धारिती का किसी ऐसे हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की, जिसका वह सदस्य है, सहदायिकी सम्पत्ति में हित और निर्धारिती का ऐसा एक गृह या

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

" 'net wealth' means the amount by which the aggregate value computed in accordance with the provisions of this Act of all the assets, wherever located, belonging to the assessee on the valuation date, including assets required to be included in his net wealth as on that date under this Act, is in excess of the aggregate value of all the debts owned by the assessee on the valuation date other than—

(i) debts which under section 6 are not be taken into account ;
(ii)
(iii) } not relevant."

**"Subject to the other provisions contained in this Act, there shall be charged for every assessment year commencing on and from the first day of April, 1957, a tax(hereinafter referred to as wealth-tax) in respect of the net wealth on the corresponding valuation date of every individual, Hindu undivided family and company at the rate or rates specified in the Schedule."

किसी गृह का भाग, जिसका प्रयोग वह अनन्यता निवास के प्रयोजनों के लिए करता हो परन्तु यह तब जबकि उसका मूल्य विनिर्दिष्ट रकम से अधिक न हो। धारा 6 के अधीन भारत के बाहर की आस्तियों और ऋणों को अपवर्जित किया गया है। धारा 7 के अधीन किसी आस्ति का मूल्य उस कीमत के रूप में प्राकलित किया जाता है जो धन-कर अधिकारी की राय में उसके लिए मिलेगा, यदि उसे मूल्यांकन की तारीख को खुले बाजार में बेचा जाए।

139. वित्त अधिनियम, 1969 (1969 का 14) द्वारा धारा 2(ङ) संशोधित की गई थी और उस धारा का सुसंगत भाग इस प्रकार है—

*" 'आस्तियों' के अन्तर्गत हर प्रकार की जंगम अथवा स्थावर सम्पत्ति भी आती है किन्तु उसके अन्तर्गत—

(1) 1969 के अप्रैल के प्रथम दिन से प्रारम्भ होने वाले निर्धारण वर्ष या किसी पूर्वतर निर्धारण वर्ष के सम्बन्ध में निम्नलिखित नहीं हैं—

(i) कृषि भूमि और ऐसी भूमि पर उगती हुई फसलें, घास या खड़े हुए वृक्ष;

(ii) किसी खेतिहर के या कृषि भूमि के लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता के स्वामित्व या अधिभोग में कोई भवन :

परन्तु यह तब जबकि वह भवन उस भूमि पर है या उसके ठीक निकट स्थित है और वह ऐसा भवन है जिसकी आवश्यकता खेतिहर या लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता को उस भूमि से अपने सम्बन्ध में कारण निवास-गृह या भण्डार गृह या वाह्य गृह के रूप में है।

(iii) जीव-जन्तु;

(iv) वार्षिकियों के सम्बन्ध में कुछ अधिकार;

(v) सम्पत्ति में कतिपय हित।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

" 'assets' include property of every description, moveable or immoveable, but does not include—

(1) in relation to the assessment year commencing on the 1st day of April, 1969 or any earlier assessment year—

(i) agricultural land and growing crops, grass or standing trees on such land ;

(ii) any building owned or occupied by a cultivator of, or receiver of rent or revenue out of, agricultural land :

Provided that the building is on or in the immediate vicinity of the land and is a building which the cultivator or the receiver of rent or revenue by reason of his connection with the land requires as a dwelling-house or a store-house or an out house ;

(iii) animals ;

(iv) certain right to annuities ;

(v) certain interests in property.

(2) 1970 के अप्रैल के प्रथम दिन से प्रारम्भ होने वाले निर्धारण वर्ष या किसी पश्चात्‌वर्ती निर्धारण वर्ष के सम्बन्ध में निम्नलिखित नहीं हैं—

(i) जीव-जन्तु;

(ii) वार्षिकियों के सम्बन्ध में कतिपय अधिकार; और

(iii) सम्पत्ति में कतिपय हित।"

धारा 5 में जिन छूटों का उपबन्ध किया गया है उनमें धारा 5 की उपधारा (1) में निम्नलिखित सुसंगत खण्डों को शामिल करके संवर्धित किया गया था। ये खण्ड इस प्रकार हैं—

*" (iv-क) निर्धारिती की कृषि-भूमि, जिसका मूल्य 1,50,000 रुपये से अधिक न हो :

परन्तु जहां निर्धारिती के स्वामित्व में कोई ऐसा गृह या गृह का भाग है, जो दस हजार से अधिक जनसंख्या वाले स्थान में स्थित है और जिसे खण्ड (iv) के उपबन्ध लागू होते हैं और ऐसे गृह या गृह के भाग का मूल्य उस कृषि-भूमि के मूल्य सहित मूल्य 1,50,000 रुपये से अधिक हो जाता है वहां वह रकम, जो इस खण्ड के अधीन निर्धारिती के शुद्ध धन में सम्मिलित नहीं की जाएगी, ऐसे गृह या उस गृह के भाग के मूल्य की इतनी रकम, जितनी खण्ड (iv) के अधीन निर्धारिती के शुद्ध धन में सम्मिलित न की जानी हो, घटा कर 1,50,000 रुपये होगी।

× × × × × ×

---

(2) in relation to the assessment year commencing on the 1st day of April, 1970 or any subsequent assessment year—

(i) animals ;

(ii) certain rights to annuities ; and

(iii) certain interests in property."

*"(iv-a) agricultural land belonging to the assessee subject to a maximum of one hundred and fifty thousand rupees in value :

Provided that where the assessee owns any house or part of a house or part of a house situate in a place with a population exceeding ten thousand and to which the provisions of clause (iv) apply and the value of such house or part of a house together with the value of the agricultural land exceeds one hundred and fifty thousand rupees, then the amount that shall not be included is the net wealth of the assessee under this clause shall be one hundred and fifty thousand rupees as reduced by so much of the value of such house or part of house as is not to be included in the net wealth of the assessee under clause (iv);

× × × × ×

(viii-क) कृषि भूमि पर उगती हुई फसलें (जिसके अन्तर्गत वृक्षों पर फल भी हैं) और ऐसी भूमि पर घास;

(ix) वे औजार, उपकरण और उपस्कर जो निर्धारिती द्वारा कृषि भूमि की खेती, संरक्षण, सुधार या अनुरक्षण के लिए या ऐसी भूमि पर कोई कृषि या उद्यान कृषि उपज पैदा करने या काटने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए औजारों, उपकरणों और उपस्कर के अन्तर्गत कोई ऐसा संयंत्र या मशीनरी नहीं आती है जिसे किसी कृषि उपज के प्रसंस्करण या ऐसी उपज से किसी वस्तु के विनिर्माण के सम्बन्ध में चाय या अन्य बागान में काम में लाया जाता है।

(x) से (xxi) × × ×"

140. कृषि भूमि, उगती हुई फसलें, घास आदि को शामिल करने से जो वस्तुतः कठिनाई हुई थी उस मूल्य में 1,50,000 रुपये की अधिकतम मूल्य के स्वरूप वाली भूमि को छूट देकर कम किया गया था। इसके अलावा ऐसी भूमि पर उगती हुई फसलों, जिनके अन्तर्गत वृक्षों पर फल भी हैं; और कृषि भूमि को खेती आदि के लिए निर्धारिती द्वारा उपयोग में लाए गए औजार, उपकरण और उपस्कर को भी छूट दी गई थी। 1969 के संशोधन के पूर्व और पश्चात् भी धन कर अधिनियम की स्कीम से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी निर्धारिती की ऐसी सभी आस्तियों के मूल्य पर वार्षिक कर अधिरोपित करना है जो मूल्यांकन की तारीख को उसके सभी ऋणों के, उन ऋणों से भिन्न जो अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित किए गए हैं, संकलित मूल्य से अधिक हों। यह बात धारा 4 में वर्णित कतिपय आस्तियों के शामिल किए जाने, धारा 5 में अन्य आस्तियों को छूट दिए जाने के कारण तथा धारा 6 के निबन्धनों के अनुसार भारत के बाहर और आस्तियों और ऋणों को अपवर्जित करने के अध्यधीन है। अतः 1969 से पूर्व यदि कोई निर्धारिती किसी कृषि-भिन्न भूमि पर प्रतिभूत ऋण या किसी ऐसे ऋण का देनदार है जो उसने ऐसी सम्पत्ति के सम्बन्ध में उपगत किया है तो उसे उसके स्वामित्व की आस्तियों के

(viii-a) growing crops (including fruits on trees) on agricultural land and grass on such lands;

(ix) the tools, implements and equipment used by the assessee for the cultivation, conservation, improvement or maintenance of agricultural land, or for the raising or harvesting of any agricultural or horticultural produce on such land.

Explanation—For the purpose of this clause, tools, implements and equipment do not include any plant or machinery used in any tea or other plantation in connection with the processing of any agricultual produce or in the manufacture of any article from such produce;

(x) to (xxi) × × ×"

मूल्य से घटा दिया जाएगा। यदि ऐसा ऋण कृषि सम्पत्ति के सम्बन्ध में हो तो उसे उससे अपवर्जित नहीं किया जायगा। 1969 के संशोधन के परिणामस्वरूप किसी सम्पत्ति, पर, चाहे वह कृषि भूमि हो या अन्यथा प्रतिभूत को ऋण और किसी सम्पत्ति के सम्बन्ध में उपगत कोई ऋण को, जब तक कि वह सम्पति ऐसी सम्पत्ति हो जिसके सम्बन्ध में धनकर प्रभार्य न हो, निर्धारिती के शुद्ध धन की संगणना करने के लिए आस्तियों के कुछ मूल्य से घटा देना होगा। कराधान किसी व्यष्टि के शुद्ध मूल्य पर, अर्थात् उसकी कुल आस्तियों पर जिनमें से उसके ऋण घटा दिए जाने थे, आधारित होना था। अतः किसी ऐसे निर्धारिती के लिए, जो यद्यपि प्रत्यक्षतः अधिक मूल्य की आस्तियों का कब्जा किए हुए हैं, सम्भव है कि वह अनुपाततः उच्च कराधान के अध्यधीन नहीं होगा यदि वह मूल्यांकन की तारीख को 2 (ङ) के परिभाषा खण्ड के अर्थान्तिर्गत अन्य व्यक्तियों को बड़े-बड़े ऋणों का देनदार है।

141. 1969 के ऐक्ट संशोधन अधिनियम द्वारा जो व्यापक परिवर्तन किया गया था वह यह था कि 1970 के अप्रैल के प्रथम दिन से प्रारम्भ होने वाले निर्धारण वर्ष के बारे में और किसी पश्चात्‌वर्ती वर्ष के बारे में आस्तियों, कृषि-भूमियों, उगती हुई फसलों या किसी खेतिहर के या कृषि भूमि से लगान या राजस्व के प्राप्तिकर्ता के अधिभोग में किसी भवन पर छूट मिलना समाप्त हो गया। इस अपील में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या कृषि भूमि आदि के सम्बन्ध में छूट को वापस ले लेने से 'आस्तियों' की परिभाषा का संशोधन करना संसद् की सक्षमता के भीतर था।

142. धन-कर अधिनियम, 1957 की विधिमान्यता को, इस विनिश्चय के पूर्व जिस पर अब अपील की गई है, भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष चुनौती दी गई थी और वह विषय इस न्यायालय के समक्ष भी आया जैसा कि वह कम से कम उन तीन विनिश्चयों में पाया गया है जो मेरे सक्षम आए हैं। किन्तु धन कर उद्ग्रहण करने के प्रयोजन के लिए 'शुद्ध धन' की परिभाषा में कृषि आस्तियों को शामिल करने की संसद् की सक्षमता के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं उठा था, इसलिए अब जो प्रश्न हमारे समक्ष है वह उन पूर्व विनिश्चयों में से किसी में कभी नहीं उठा था। उन विनिश्चयों में से किसी भी विनिश्चय में, जिनका अब उल्लेख किया जाएगा, विधान के किसी विशिष्ट शीर्षक में कोई विशिष्ट निदेश नहीं था जिसके अन्तर्गत आस्तियों के संकल्प पर धन कर का अधिरोपण आ जाएगा। अतः इस क्षेत्र पर संसद् की विधान करने की सक्षमता के बारे में न तो किसी पूर्व अनुमानित धारणा पर और न ही पहले किए गए विनिश्चयों में से किसी विनिश्चय के आधार पर, विचार करना अनुचित नहीं होगा।

143. भारत का संविधान, जो कि बहुत समय तक विचार-विमर्श करने के पश्चात् संविधान सभा द्वारा तैयार किया गया था, इसलिए बनाया गया था कि वह इतनी पूर्ण संहिता हो जितनी सम्भव हो सकती हो और इससे सभी पूर्ववर्ती विधियों और विधि निर्मित करने की सभी शक्तियों की परख हो जानी थी और उससे मार्गदर्शन होना था। चूंकि भारत को ऐसा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनना था, जो राज्यों के संघ से मिलकर बनेगा इसलिए संविधान निर्माताओं के लिए यह आवश्यक था कि वे यथासम्भव सूक्ष्मता से संघ और राज्य के अपने-अपने कृत्यों की तथा संघ और राज्यों के

बीच सम्बन्धों की परिभाषा करते। क्योंकि संघ और राज्यों दोनों को विधायी शक्तियां प्राप्त होनी थी इसलिए उनमें विधायी शक्तियों का वितरण करना आवश्यक हो गया और उन शक्तियों का इतना स्पष्ट, जितना कि सम्भव हो सीमांकन करने के लिए उपबन्ध करना आवश्यक हो गया। ऐसा करने का प्रयास संविधान के भाग 11 के अध्याय 1 में जिसमें अनुच्छेद 245 से अनुच्छेद 255 अन्तर्विष्ट हैं, किया गया था। संसद् द्वारा और राज्य विधानमण्डलों द्वारा बनाई गई विधियों का राज्य-क्षेत्रीय विस्तार अनुच्छेद 245 में दिया गया है। अनुच्छेद 245 में यह उपबन्धित है कि इस संविधान के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए संसद् भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी तथा किसी राज्य का विधानमण्डल उस सम्पूर्ण राज्य के अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा। संविधान के अनुच्छेद 246 के अधीन विधान की विषयवस्तुओं को संविधान की सप्तम अनुसूची में प्रगणित तीन सूचियों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है और उसमें इस बात का संकेत किया गया है कि किसी विषयवस्तु पर विचार करने के लिए कौन-सा विधायी निकाय सक्षम है। अनुच्छेद 246 के खण्ड 1 में संसद् को सप्तम अनुसूची की सूची 1 में प्रगणित विषयों में से किसी के बारे में विधि बनाने की अनन्य शक्ति दी गई है और यह खण्ड (2) और खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी है। खण्ड (2) द्वारा संसद् तथा किसी राज्य के विधानमण्डल, दोनों, को सप्तम अनुसूची की सूची 3 में प्रगणित विषयों के सम्बन्ध में विधियां बनाने के शक्ति दी गई है और वह खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी है। खण्ड (3) द्वारा किसी राज्य के विधानमण्डल को सूची 1 के विषयों के सम्बन्ध में ऐसे भाग या उसके किसी भाग के लिए विधियां बनाने की अनन्य शक्ति दी गई है। राज्य को, सूची 1 और सुची 3 के विषयों के सम्बन्ध में संसद् की शक्तियों के अध्यधीन रहते हुए, सूची 2 के विषयों के सम्बन्ध में अनन्य शक्ति है जब कि सूची 3 के विषय संसद् और राज्य विधानमण्डल दोनों, द्वारा विधान के विषयवस्तु हो सकते हैं। लेकिन खण्ड (4) द्वारा संसद् को भारत राज्यक्षेत्र के किसी भाग के लिए, जो किसी राज्य के अन्तर्गत नहीं है, किसी भी विषय के बारे में विधि बनाने की शक्ति है चाहे फिर वह विषय राज्य सूची में प्रगणित विषय क्यों न हो। स्पष्ट है कि संविधान ने संसद् को संविधान के अनुच्छेद 1 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में वर्णित संघ राज्यक्षेत्र और उक्त खण्ड के उपखण्ड (ग) में वर्णित अन्य राज्यक्षेत्रों के, जो संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् अर्जित किए जाएं, सम्बन्ध में विधियां बनाने की शक्ति प्रदान की है। संविधान निर्माताओं ने इस सम्भावना की परिकल्पना की थी कि ऐसी विषयवस्तुएं विद्यमान हो सकती हैं या घट सकती हैं जिनकी न तो सूची 2 (राज्य सूची) में और न ही सूची 3 (समवर्ती सूची) में परिगणना की गई है। इसका संविधान के अनुच्छेद 248 में उपबन्ध करने का प्रयास किया गया है। अनुच्छेद 248 इस प्रकार है—

> "(1) संसद् को ऐसे किसी विषय के बारे में, जो समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में प्रगणित नहीं हैं, विधि बनाने की अनन्य शक्ति है।
>
> (2) ऐसी शक्ति के अन्तर्गत ऐसे करों के, जो उन सूचियों में से किसी में वर्णित नहीं हैं, आरोपण करने के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति भी है।"

144. अत: उपरोक्त तीनों अनुच्छेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने इस बात का ध्यान रखा था कि किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में, जिसे

संविधान की तारीख तक विधान के लिए उपयुक्त नहीं समझा गया था या किसी कारणवश सूची 2 या सूची 3 के क्षेत्र से लुप्त कर दिया गया था, विधि बनाने की शक्ति विधान बनाने की संसद् की अनन्य शक्ति के भीतर हो। विधि बनाने की ऐसी शक्ति का विस्तार उन सूचियों में से किसी भी सूची में अवर्णित कर का अधिरोपण करने तक था।

145. संविधान निर्माता राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधियों के संसद् द्वारा अपनी सक्षमता के भीतर बनाई गई विधियों से टकराने की सम्भावना के प्रति भी जागरूक थे और उन्होंने इस कठिनाई से बचने के लिए अनुच्छेद 254 में यह उपबन्ध करने का प्रयास किया कि संसद् द्वारा निर्मित विधियां, चाहे वे किसी राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के पहले या पीछे पारित की गई हों, ऐसी आकस्मिकता में अभिभावी होंगी। लेकिन यह खण्ड (2) के अध्यधीन होगा। अनुच्छेद 250 का उद्देश्य संसद् को भारत राज्य क्षेत्र के सम्पूर्ण या किसी भाग के लिए राज्य सूची में प्रगणित विषयों में किसी के बारे में विधियां बनाने की शक्ति प्रदान करना है जब कि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो। प्रसामान्य परिस्थितियों में संसद् और राज्य विधानमण्डलों की विधायी शक्ति का विस्तार संविधान के अनुच्छेद 246 और 248 के अनुसार किया जाना होता है।

146. सप्तम अनुसूची में, जो तीन सूचियों में विभक्त है, विधान के 209 शीर्षक या विषय वस्तुएं सूची 1 में 96 प्रविष्टियां, सूची 2 में 66 प्रविष्टियां और सूची 3 में 47 प्रविष्टियां और इसके अलावा सूची 1 में प्रविष्टि 97 उपवर्णित की गई हैं। सूची 1 की प्रविष्टि 97 इस प्रकार है—'सूची 2 या 3 में से किसी में अवर्णित किसी कर के सहित उन सूचियों में अप्रगणित कोई अन्य विषय'।

147. कुछ ही संविधानों में विधान की विषय वस्तुओं के ऐसे सूक्ष्म प्रगणन का प्रयास किया गया है। गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सप्तम् अनुसूची में अन्तर्विष्ट विधायी सूचियों के भीतर संघ विधायी सूची नाम से ज्ञात सूची 1 में 59 प्रविष्टियों से प्रान्तीय विधायी सूची के रूप में ज्ञात सूची 2 में 54 से और समवर्ती विधायी सूची नाम से ज्ञात सूची 3 में 36 प्रविष्टियों से अधिक प्रविष्टियां नहीं थीं। यदि संविधान की सूची 1 और गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की सूची 1 के बीच थोड़ी सी तुलना भी की जाए तो कुछ विषयों-वस्तुओं की वृद्धि दिखाई देगी जो उस समय जब गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट अधिनियमित किया गया था विद्यमान् नहीं थीं या उन पर उस समय विचार ही नहीं किया गया था। उदाहरणार्थ प्रस्तुत सूची 1 की प्रविष्टि 6 इस प्रकार है—अणुशक्ति तथा उसके उत्पादन के लिए आवश्यक खनिज सम्पत्ति और प्रविष्टि 12 'संयुक्त राष्ट्र संगठन'; सन् 1935 में अणुशक्ति तो केवल वैज्ञानिकों के दिमाग में ही थी। 'संयुक्त राष्ट्र संगठन' उस समय विद्यमान ही नहीं था यद्यपि लीग ऑफ नेशन्स मौजूद थी, सम्भवत: गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के अधीन सूची 1 में किसी ऐसी प्रविष्टि को शामिल करना आवश्यक ही नहीं समझा गया था क्योंकि इम्पीरियल पार्लियामेण्ट ही इस विषय से तात्विक रूप से सम्बन्धित थी। प्रस्तुत सूची की प्रविष्टि 14—'विदेशों से सन्धि और करार करना तथा विदेशों से की गई सन्धियों, करारों और अभिसमयों की अभिपूर्ति' और प्रविष्टि 15 'युद्ध और शांन्ति' विधान के विषय-वस्तु नहीं हो सकते थे जब कि फैड्रल विधानमण्डल ऐसे

प्रयोजनों के लिए प्रभुत्व सम्पन्न निकाय नहीं था। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि प्रस्तुत सूची 3 की—

"प्रविष्टि 20—आर्थिक और सामाजिक योजना।

प्रविष्टि 21—वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गुट्ट और न्यास, और

प्रविष्टि 23—सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा; नौकरी और बेकारी।"

जैसी प्रविष्टियों का गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट सप्तम अनुसूची की किसी भी सूची में कोई प्रतिरूप नहीं था। किन्तु हमारे प्रस्तुत प्रयोजन के लिए जो कुछ आवश्यक है वह इस बात पर ध्यान देना है कि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की सूची 1 में प्रस्तुत प्रविष्टि 97 जैसी कोई प्रविष्टि नहीं थी। उक्त ऐक्ट की धारा 104, जो कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 248 के सदृश है, इस प्रकार—

*"(1) उपराज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा या तो फेडरल विधानमण्डल को या प्रान्तीय विधानमण्डल को इस ऐक्ट की सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में अप्रगणित किसी विषय के सम्बन्ध में विधि अधिनियमित करने के लिए सशक्त कर सकता है जिसमें किसी ऐसी सूची में अवर्णित कर के अधिरोपण के लिए विधि भी शामिल है तथा यथास्थिति संघ या प्रान्त का कार्यपालिक प्राधिकार का विस्तार इस प्रकार निर्मित किसी विधि के प्रशासन तक होगा जब तक कि उपराज्यपाल अन्यथा निदिष्ट न करे।

(2) इस धारा के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन करने में उपराज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य करेगा।"

यह बात ध्यान देने की है कि इम्पीरियल पार्लियामेण्ट इस तथ्य के प्रति जागरूक थी कि विधान की ऐसी विषय-वस्तुएं हो सकती हैं जो सप्तम अनुसूची की तीनों सूचियों में से किसी के अन्तर्गत न आती हों किन्तु उन्हें फेडरल विधानमण्डल की देख-रेख में नहीं छोड़ा गया था या फेडरल विधानमण्डल या राज्य विधानमण्डलों के बीच विभाजित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। यह तो उपराज्यपाल का कार्य था कि वह या तो फेडरल

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(1) The Governor-General may by public notification empower either the Federal Legislature or a Provincial Legislature to enact a law with respect to any matter not enumerated in any of the lists in the Seventh Schedule to this Act, including a law imposing a tax not mentioned in any such list, and the executive authority of the Federation or of the Province, as the case may be, shall extend to the administration of any law so made, unless the Governor-General otherwise directs.

(2) in the discharge cf his functions under the section the Governor-General shall act in his discretion."

विधानमण्डल या किसी प्रान्तीय विधानमण्डल को लोक अधिसूचना द्वारा किसी ऐसे सूची में अवर्णित किसी विधि के सम्बन्ध में कोई विधि अधिनियमित करने के लिए सशक्त करे और इस कृत्य के निर्बहन में उपराज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्यवाही करनी होती थी। इसका स्पष्टीकरण संसदाय डिबेटों में अभिलिखित सैम्युल होर के भाषण में पाया जाता है, वह स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

> "बहुत निश्चित रूप से भारतीय राय उन हिन्दुओं के बीच, जो प्रमुख शक्तियों को केन्द्र में रखना चाहते थे और उन मुसलमानों के बीच, जो प्रमुख शक्ति प्रान्तों में रखना चाहते थे, विभक्त थी। उस भावना से इन समुदायों में से हर एक समुदाय में ऐसी बात उत्पन्न हो गई कि वे अवशिष्ट क्षेत्र को बहुत ही संदेह से देखते थे। हिन्दुओं की मांग थी कि वह केन्द्र के पास रहे और मुसलमानों की मांग थी कि वह प्रान्तों के पास रहे।"

उसी भाषण से यह भी प्रकट होता है कि मतभेद को समाप्त करने के सभी प्रयासों से केवल यही परिणाम निकला कि फेडरल सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची तैयार की गई और उनमें हर एक इतनी सांगोपांग थी जितनी कि सम्भवत: हो सकती थी और अवशिष्ट क्षेत्र के लिए बहुत कम या कुछ भी नहीं छोड़ा गया था। उक्त वक्ता ने ऐसी आशा प्रकट की कि 'जो कुछ भी अवशिष्ट क्षेत्र में जाने की सम्भावना थी वह सम्भवत: क्रियाकलाप के कुछ ऐसे अज्ञात क्षेत्र थे जिनकी वर्तमान स्थिति में परिकल्पना नहीं की जा सकती थी।

148. इस विषय पर संविधान सभा का ध्यान लगा रहा। संविधान सभा के अध्यक्ष के नाम तारीख 5 जुलाई, 1947 वाली यूनियन पावर्स कमेटी की दूसरी रिपोर्ट में निम्नलिखित कथन अन्तर्विष्ट है—

> "हमारा यह विचार है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास रहनी चाहिए। लेकिन हमने जो तीन सूचियां तैयार की हैं उनकी सांगोपांग प्रकृति की दृष्टि से अवशिष्ट विषय केवल उन विषयों से सम्बन्धित हो सकते हैं, जब कि वे भविष्य में मान्यता का दावा कर सकते हैं किन्तु वे वर्तमान स्थिति में पहचानने योग्य नहीं हैं और इसलिए उन्हें अब इन सूचियों में शामिल नहीं किया जा सकता।"

उपरोक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए श्री गोपालस्वामी आय्यंगर ने 20 अगस्त, 1947 को अपने भाषण में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा—

> "हम इस देश के केन्द्र को यथासम्भव मजबूत बनाएं और प्रान्तों के अनेकों विषयों को छोड़ दें जिन पर प्रान्तों को अत्यधिक स्वतन्त्रता होगी कि वे जैसा चाहें वैसा करे। इस दृष्टिकोण के अनुसार यह विनिश्चित किया गया था कि हम तीन सांगोपांग सूचियां तैयार करें। उनमें से एक फैडरल विषयों के सम्बन्ध में और दूसरी प्रान्तीय विषयों के सम्बन्ध और तीसरी समीपवर्ती विषयों के सम्बन्ध में हो और यदि कोई अवशिष्ट विषय रह भी जाए, यदि भविष्य में कोई ऐसा विषय उत्पन्न हो जाए जिसे इन तीनों सूचियों में से किसी में भी शामिल न किया जा सके तब जहां तक कि प्रान्तों का सम्बन्ध है उस विषय के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह केन्द्र के पास है।"
>
> (देखिए कांस्टिट्युएण्ट असैम्बली डिबेट्स, खण्ड 5, पृष्ठ 37)।

149. यह बात ध्यान देने की है कि गोपालस्वामी आय्यंगर का भाषण लगभग उन्हीं आधारों पर है जिन्हें सैम्यूल होर ने विधायी सूचियों की विरचना करने में अपनाए गए सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए बताया था और विशिष्टतया उक्त धारा के अधीन सप्तम् अनुसूची की सूची 1 की किसी प्रविष्टि के अध्यधीन विषय को रखे बिना अवशिष्ट विषय को गर्वनर जनरल के जिम्मे छोड़ने का विनिश्चय स्पष्ट किया था। इन सूचियों पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है कि कुछ दशाओं में विधान की विषय-वस्तुओं के व्यापक वर्गों को एक से अधिक शीर्षकों में विभक्त किया गया था और उन्हें भिन्न-भिन्न सूचियों में रखा गया था। अत: जब कि साधारणतया 'उद्योग' सूची 2 की विधायी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं, उस सूची की प्रविष्टि 24 के अधीन उद्योगों का कुछ भाग उस प्रविष्टि से निकाल लिया गया है और उसे सूची 1 के अधीन संसद की अनन्य संक्षमता के भीतर रखा गया है। ये भाग संघ सूची की प्रविष्टि 7 में अर्थात् 'संसद निर्मित विधि द्वारा प्रतिरक्षा के प्रयोजन के लिए अथवा युद्ध चलाने के लिए आवश्यक घोषित किए गए उद्योग' और प्रविष्टि 52 में 'वे उद्योग जिनके लिए संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि लोक हित के लिए उन पर संघ का नियन्त्रण इष्टकर है' वर्णित किए गए हैं। एक और उदाहरण लीजिए 'निवारक निरोध' सूची 1 और सूची 3, दोनों, में आता है। सची 1 की प्रविष्टि 9 इस प्रकार है—'भारत की प्रतिरक्षा, विदेशीय कार्य या सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति' जब कि 'राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने से अथवा समुदाय के लिए अत्यावश्यक सम्भरणों और सेवाओं को बनाए रखने से संसक्त कारणों के लिए निवारक निरोध, ऐसे निरुद्ध व्यक्ति' मद 3 के रूप में समवर्ती सूची में रखी गई है। जहां तक सूची 1 की प्रविष्टि 9 में वर्णित निवारक निरोध के पहलुओं का सम्बन्ध है संसद को अनन्य शक्ति प्राप्त है। राज्य विधानमंडल की निवारक निरोध के सम्बन्ध में विधान करने की सक्षमता केवल सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन ही हो सकती है किन्तु तब भी वह संसद द्वारा अनन्य विधान के लिए पृथक् रखे गए क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकती यद्यपि विधान के दोनों क्षेत्रों की, कतिपय परिस्थितियों के अधीन, एक ही सीमांकन रेखा हो सकती है जिसकी परिभाषा करना बड़ा कठिन हो सकता है।

150. जहां तक 'भूमियों', चाहे वे कृषि भूमियां हों या अन्यथा कृषि आय और इन विषयों में से किसी विषयों के सम्बन्ध में करों का सम्बन्ध है, विशिष्ट विवरण इस प्रकार है—

सूची 1

प्रविष्टि 82. कृषि आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर।

प्रविष्टि 86. व्यक्तियों या समवायों की आस्ति में से कृषि भूमि को छोड़कर उसके मूलधन मूल्य पर कर, समवायों के मूलधन पर कर।

प्रविष्टि 87. कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति शुल्क।

प्रविष्टि 88. कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क।

1971(10) eILR(PAT) SC 1

सूची 2

प्रविष्टि 18. भूमि अर्थात् भूमि में या पर अधिकार भूधृती, जिसके अन्तर्गत भू-स्वामी और किसानों का सम्बन्ध भी है, तथा भाटक संग्रहण कृषि भूमि का हस्तान्तरण और अन्य संक्रामण, भूमि सुधार और कृषि सम्बन्धी उधार ; उपनिवेश ।

प्रविष्टि 46. कृषि आय पर कर ।

प्रविष्टि 47. कृषि भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क ।

प्रविष्टि 48. कृषि भूमि के विषय में सम्पत्ति शुल्क ।

प्रविष्टि 49. भूमि और भवनों पर कर ।

सूची 3

प्रविष्टि 6. कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्तियों का हस्तान्तरण; विलेखों और दस्तावेजों का पंजीयन ।

प्रविष्टि 7. संविदा, जिनके अन्तर्गत भागिता, अभिकरण, परिवहन संविदा और अन्य विशेष प्रकार की संविदाएं भी हैं, किन्तु कृषि भूमि सम्बन्धी संविदाएं नहीं हैं ।

प्रविष्टि 41. विधि द्वारा निष्क्रांत घोषित सम्पत्ति की कृषि भूमि सहित अभिरक्षा, प्रबन्ध और व्ययन ।

प्रविष्टि 42. सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण ।

151. इन सूचियों और विशेषतया ऊपर वर्णित प्रविष्टियों का अवलोकन करने पर इस बात में बहुत कम सन्देह रह जाता है कि संविधान निर्माताओं ने भूमि सम्बन्धी और विशिष्टतया कृषि भूमि सम्बन्धी तथा कृषि भूमि के धारण करने से आनुषंगिक विषयों से सम्बन्धित विधान की विषय-वस्तुओं को राज्य विधानमण्डलों की अनन्य अधिकारिता में रखने की सावधानी बरती थी । यद्यपि संसद सम्पत्ति के अन्तरणों और साधारणतया संविदाओं पर विधान करने के लिए सक्षम है तथापि इस सम्बन्ध में विधायी शक्ति का प्रयोग कृषि भूमि पर नहीं किया जा सकता किन्तु जब निष्क्रांत सम्पत्ति के अन्तर्गत कृषि भूमि आती हो तब संसद सूची 3 की प्रविष्टि 41 के अधीन उसकी अभिरक्षा, प्रबन्ध और व्ययन के सम्बन्ध में विधान करने के लिए सक्षम है । इसी प्रकार जब किसी प्रश्न का सम्बन्ध कृषि भूमि सहित सम्पत्ति के अर्जन या अध्यपेक्षा से सम्बन्ध हो तब संसद और राज्य विधानमण्डल, दोनों ही विधायी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सक्षम होते हैं ।

152. इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहां तक कृषि भूमि से सम्बन्धित विधान के विनिर्दिष्ट विषयों का सम्बन्ध है वे सूची 2 में उपवर्णित किए गए हैं जब कि सूची 1 में तत्समान ऐसी प्रविष्टियां हैं जो अभिव्यक्त रूप से कृषि भूमि को अपवर्जित करती हैं । अतः सूची 2 की प्रविष्टि 46 इस प्रकार है—'कृषि आय पर कर' ।

सूची 1 की प्रविष्टि 82 में यह वर्णित है—'कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर'। तत्पश्चात् सूची 2 की प्रविष्टि 47—'कृषि भूमि के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क' का प्रतिरूप सची 1 की प्रविष्टि 88 में है—'कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क। सूची 2 की प्रविष्टि 48—'कृषि भूमि के विषय में सम्पत्ति शुल्क' का प्रतिरूप सूची 1 की प्रविष्टि 87 में है—'कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति के बारे में सम्पत्ति शुल्क' किन्तु सूची 2 की प्रविष्टि 86 इस प्रकार है—'व्यक्तियों या कम्पनियों की आस्ति में से कृषि भूमि को छोड़कर उसके मूलधन मूल्य पर कर, कम्पनियों के मूलधन पर कर' लेकिन इस प्रकार की कोई प्रविष्टि कृषि भूमियों के मूलधन मूल्य पर कर के सम्बन्ध में नहीं है। इससे मिलती जुलती प्रविष्टि सूची 2 की प्रविष्टि 49—'भूमि और भवनों पर कर' है।

153. धनकर अधिनियम की सही प्रकृति जानने के लिए विधान के सही प्रविषय को अभिनिश्चित करने के लिए हमें प्रभारी धारा की ओर देखना होगा। **प्रोविन्शियल ट्रेजरर आफ मलबर्टा और एक अन्य** बनाम **सी० ई० केर और एक अन्य** ([1]) में प्रिवी काउन्सिल की जूडिशियल कमेटी के शब्दों में कर की विषय वस्तु की पहचान वस्तुत: कानून की प्रभारी धारा में ही पाई जा सकती है और केवल प्रभारी धारा के निबन्धनों में कुछ संदिग्धता होने की दशा में ही अन्य धाराओं का आश्रय लेना आवश्यक होगा। सारत: ऐक्ट की स्कीम व्यष्टि को ऐसे मानना है मानों वह कोई कारबार हो, उस कीमत को जो उक्त कारबार से मिलेगी विनिश्चित करना है और उसकी मूर्त आस्तियों में से उसके दायित्वों को घटा कर अभिनिश्चित करना है और अतिशेष पर, जो किसी व्यष्टि का शुद्ध धन है, कर अधिरोपित करना है। अत: धनकर अधिनियम के अधीन जैसे कि वह मूलत: अधिनियमित किया गया था, आस्तियों का कुछ भाग अर्थात् कृषि भूमि को लेखा में नहीं लिया जाना था, 1969 के संशोधन से कारबार के मूल्य की संगणना करने के लिए उसे लेखा में लिया जाने लगा। अधिनियम के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है यह तो पहले से भी अधिक व्यापक बना दिया गया।

154. अब हमें उस विधायी प्रविष्टि का पता चलाना है जिसके अनुरूप उक्त अधिनियम है। यदि सूची 1 की प्रविष्टि 97 की उपेक्षा कर दी जाए तो एकमात्र प्रविष्टि जोकि इससे सम्बन्धित हो सकती है, वह प्रविष्टि 86 होगी और न तो सूची 2 में और न ही सूची 3 में कोई ऐसी प्रविष्टि होगी जो उससे सम्बन्धित हो जब तक कि यह दृष्टिकोण न अपनाया जाए कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 में किसी व्यष्टि के धन का वह भाग, जिसका आधार भूमियों और भवनों पर है, समाविष्ट होगा।

155. अत: हम सूची 2 की प्रविष्टि 49 और सूची 1 की प्रविष्टि 46 के सही प्रविषय की परीक्षा करेंगे। यदि अधिनियम इन दोनों प्रविष्टियों में से किसी के अन्तर्गत नहीं आता है तो वह सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आना चाहिए और संविधान के अनुच्छेद 248 के अधीन संसद् की विधायी सक्षमता के भीतर आना चाहिए। अनुच्छेद 248 के खण्ड (1) में अभिव्यक्त शब्दों के अधीन केवल इस बात पर विचार किया जाना है कि

([1]) (1933) ए० सी० 710.

क्या विधान की विषयवस्तु सूची 2 या सूची 3 में समाविष्ट है। यदि वह इन दोनों सूचियों में समाविष्ट नहीं है तो संसद् सूची 1 के समान विषय के सम्मिलित किए जाने या इस सूची में ऐसे विषय की विनिर्दिष्ट सीमाओं के निरपेक्षता उस पर विधान करने के लिए सक्षम है।

156. धनकर अधिनियम, 1957 के पारित किए जाने से पूर्व गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सप्तम् अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 55 या उसकी उत्तरवर्ती प्रस्तुत प्रविष्टि 86 की ओर कुछ भी ध्यान दिया गया था। फैडरल विधानमण्डल को कोई भी ऐक्ट प्रत्यक्षत: प्रविष्टि 55 के अधीन नहीं था। लेकिन प्रान्तीय विधानमण्डलों या राज्य विधानमण्डलों द्वारा अधिरोपित करों पर आक्रमण करने के प्रयास किए जा चुके हैं कि उनके अन्तर्गत प्रविष्टि 55 या प्रविष्टि 86 की विषयवस्तु आती है। इन मामलों पर सम्यक् अनुक्रम में विचार किया जाएगा।

157. 'मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति की न तो इंग्लैण्ड के और न ही भारतीय किसी अधिनियम में परिभाषा की गई है किन्तु यह एक ऐसा पद है जो इंग्लैण्ड में लॉ ऑफ रेटिंग में सुविज्ञात है। रेटिंग पर राइड की पुस्तक, 11वां संस्करण, पृष्ठ 433, के अनुसार—

> "जहां सम्पत्ति इस प्रकार की है कि उसे वर्ष प्रति वर्ष भाटक पर बहुत कम दिया जाता है वहां वार्षिक मूल्य के अभिनिश्चयन के लिए मार्गदर्शक के रूप में कभी-कभी भूमि और भवनों के मूलधन मूल्य पर ब्याज या वास्तविक कीमत का आश्रय लेना पड़ता है।"

इसके अतिरिक्त विद्वान् लेखक के अनुसार—

> "जहां किसी विशिष्ट चल सम्पत्ति की परिस्थितियों के अनुसार सर्वोत्तम साक्ष्य असम्भव हो वहां या तो मूलधन मूल्य पर या सन्निर्माण की कीमत का सहारा लिया जा सकता है, उनमें से किसी को भी, समुचित शुद्धियों के पश्चात् वार्षिक मूल्य के लगभग समान निबन्धनों में सम्परिवर्तित किया जा सकता है। देखिए—पृष्ठ 436 **राबिन्सन ब्रदर्स (ब्रियूअर्स) लिमिटेड बनाम हगटन एण्ड चेस्टर-ली-स्ट्रट असेस्मेण्ट कमेटी** (1937—2 के० बी० 445 पृष्ठ 481) में लार्ड जस्टिस स्टाक द्वारा अभिव्यक्ति नियम।"

रेटिंग पर फैरेडी की पुस्तक (पांचवां संस्करण) पृष्ठ 42 के अनुसार—

> "'प्रभावी मूलधन मूल्य' एक ऐसा पद है जिसका उपयोग सामान्यता मूल्यांककों द्वारा किया जाता है किन्तु अब तक ऐसे पद की कोई भी परिभाषा किसी भी पाठ्य पुस्तक में नहीं मिलती है और किसी भवन का 'प्रभावी मूलधन मूल्य' अवधारित करने के लिए मूल्यांकक को इस पद के उचित महत्व को समझना चाहिए।"

इसके पश्चात् विद्वान् लेखक ने इस अभिव्यक्ति के निश्चित अर्थ पर चर्चा की है। पहले कुछ उदाहरण देने के पश्चात् पृष्ठ 43 पर उसका नकारात्मक अर्थ स्पष्ट करते हुए यह

कथित किया है—

"उपरोक्त उदाहरण 'प्रभावी मूलधन मूल्य' की परिभाषा करने की कठिनाई को प्रकट करने के लिए पर्याप्त दृष्टान्त हैं। यह निवेदित किया जाता है कि इस अभिव्यक्ति की सारवान् परिभाषा 'प्रश्नगत सम्पत्ति के इच्छुक विक्रेता और इच्छुक क्रेता के बीच विक्रय कीमत है जो इस निर्बन्धन के अध्यधीन है कि उसका अधिभोग सारतः उसकी विद्यमान अवस्था में ही किया जा सकता है'; इसमें ऊपर वर्णित सभी शर्तें लेखा में आ जाती हैं किन्तु यह देखा जा सकता है कि उस अंक को निर्धारित करना प्रत्यक्षतः भाटक मूल्य निकालने से आसान नहीं है।"

हेल्ज़बरीज़ लॉज़ ऑफ इंग्लैण्ड, तृतीय संस्करण, खण्ड 32, पृष्ठ 72, के अनुसार—

"जहां न तो वास्तविक भाटक और न ही व्यापार के लाभ वार्षिक भाटक मूल्य का कोई साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं वहां चल सम्पत्ति या प्रतिस्थापित चल सम्पत्ति के सन्निर्माण के खर्चे या उसकी संरचना के मूल्य की प्रतिशतता को कभी-कभी साक्ष्य के रूप में लिया जाता है। इस प्रकार लिए गए मूल्य को कभी-कभी 'प्रभावी' मूलधन मूल्य कहा जाता है अर्थात् वह मूलधन मूल्य, जिसमें अनावश्यक अलंकरण या आवश्यकताओं से अतिशेष स्थान को तथा यदि आवश्यक हो तो असुविधा और अप्रचलन के लिए मोक दे कर व्यय को लेखा में नहीं लिया जाता है।"

इसके आगे यह भी कहा गया है कि—

"उदाहरणार्थ मूल्यांकन की यह पद्धति लोक उपयोगिता के उपकरणों के उत्पादक भागों, की (जैसे कि जल संकर्म) (वाटर वर्क्स) नगरपालिक सम्पत्ति (जैसे कि स्कूल, मल-प्रवाह पद्धति, टाउन हाल, फायर स्टेशन, स्विमिंग पूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय भवन, लोक स्कूल, दीप स्तम्भ और वृद्ध व्यक्तियों के गृह आदि को प्रत्यक्षतः लागू की जाती है।"

लॉ ऑफ रेटिंग के सिवाय 'मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति का उपयोग इंग्लैण्ड की विधि की किसी भी शाखा में नहीं किया गया है। स्ट्राउड की जूडिशियल डिक्शनरी में या जोवियट्ट की लॉ डिक्शनरी में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इसके बावजूद भी इस अभिव्यक्ति का उपयोग गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 में किया गया था, यह ऐक्ट एक ऐसा कानून है जो इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट द्वारा पारित किया गया था और यह उन लोगों द्वारा तैयार किया गया था जिनके बारे में यह आशयित है कि वे इंग्लैण्ड के अधिवक्ताओं को ज्ञात शब्दों और पदों से परिचित थे। अतः 'आस्तियों के मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति का इस अर्थ में निर्वचन करना अनुचित नहीं होगा कि उससे आस्तियों का वह संकलित मूल्य अभिप्रेत है जो संव्यवहार के समय सम्पत्ति की जो दशा हो उसी के लिए कोई इच्छुक क्रेता किसी इच्छुक विक्रेता को देना चाहेगा स्वभावतः क्रेता सम्पत्ति पर के विल्लंगमों और क्रेता द्वारा सृजित उस पर के प्रभारों की जांच करेगा। किन्तु उसका सम्पत्ति के अर्जन या उसके अनुरक्षण के प्रयोजन के लिए विक्रेता द्वारा उपगत अन्य ऋणों या दायित्वों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। 'किसी व्यष्टि की आस्तियों का मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति का इस प्रकार निर्वचन करने से उसमें केवल आस्तियां आएंगी जिनमें से प्रतिभूत प्रभार घटा दिए जाएंगे किन्तु कोई अन्य दायित्व नहीं घटाया जाएगा।

158. गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 42 संविधान की सूची 2 की प्रविष्टि 49 की पूर्वगामी प्रविष्टि है और वह इस प्रकार है—'भूमियों और भवनों, चूल्हों और खिड़कियों पर कर'। चूल्हों और खिड़कियों को सम्मिलित करने से प्रविष्टि में कोई खास अन्तर नहीं पड़ा और इसलिए संविधान की सूची में से उसे हटा दिया गया था। **सर बाइरामजी जीजीभाई** बनाम **मुम्बई प्रान्त** ([1]) में सूची 2 की प्रविष्टि 42 के प्रविषय की सूची 1 की प्रविष्टि 55 के साथ-साथ परीक्षा की गई थी। प्रविष्टि 55 संविधान की सूची 1 की प्रविष्टि 86 के समरूप है। उस मामले में अर्बन इम्मूवेबल प्रापर्टी टैक्स ऐक्ट नाम से ज्ञात करके उद्ग्रहण करने की राज्य विधानमण्डल की अधिकारिता को चुनौती दी गई थी उस मामले में बॉम्बे फाइनेन्स ऐक्ट, 1932 के भाग 6 पर, जो कि बॉम्बे फाइनेन्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1939 द्वारा उसमें सम्मिलित किया गया था, आक्रमण किया गया था। बॉम्बे फाइनेन्स ऐक्ट के उक्त भाग 6 की धारा 20 में यह निदेश दिया गया था कि उक्त भाग को सम्मिलित किया जाने का अर्थ मुम्बई नगर और उसमें वर्णित अन्य स्थानों तक उसका विस्तार करना था। धारा 21 में मुम्बई नगर में 'वार्षिक भाटक मूल्य' की परिभाषा की गई थी कि उससे सिटी ऑफ बॉम्बे म्यूनिसिपल ऐक्ट, 1888 के उपबन्धों के अनुसार यथा अवधारित भवनों या भूमियों का कर योग्य मूल्य अभिप्रेत है। धारा 22 में, जो कि प्रभारी धारा थी, यह उपबन्धित था कि भवनों और भूमियों पर अर्बन इम्मूवुल प्रापर्टी टैक्स के नाम से ज्ञात कर ऐसे भवनों या भूमियों के वार्षिक भाटक मूल्य के दस प्रतिशत की दर पर प्रान्तीय सरकार द्वारा उद्गृहीत किया जाएगा और उसे संदत्त किया जाएगा प्रान्तीय सरकार के विधायी प्राधिकारी की परीक्षा करते हुए मुख्य न्यायाधिपति ल्यूमौण्ट ने यह मत व्यक्त किया—

> "आक्षेपित कर या तो (1) प्रान्तीय सूची की मद 42 के भीतर न कि फैडरल सूची के भीतर, या (2) फैडरल सूची की मद 54 या मद 55 के भीतर न कि प्रान्तीय सूची के भीतर आ सकता है, या (3) यह दोनों सूचियों के अन्तर्गत आ सकता है।"

यह ध्यान देने की बात है कि मद 54 इस प्रकार है— "कृषि आय से भिन्न आय पर कर' और मद 55 इस प्रकार है—"व्यक्तियों या कम्पनियों की आस्ति में से कृषि भूमि को छोड़कर उसके मूलधन मूल्य पर कर; कम्पनियों के मूलधन मूल्य पर कर"। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के अनुसार आक्षेपित कर आय पर कर नहीं था। विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति ने यह मत व्यक्त किया—

> "प्रभारी धारा 22 भूमियों और भवनों पर न कि आय पर कर अधिरोपित करती है और कर का आधार वार्षिक मूल्य है। यह मनमाना आधार है जिसे मूलधन मूल्य अभिनिश्चित करने के लिए भी लागू किया जा सकता था जैसे कि आय अभिनिश्चित करने के लिए लागू किया जाता है। इस तथ्य से कि छोटे-मोटे स्वामी को कुछ रियायत दी जाती है, ऐसी रियायत जो राजनीतिक और आर्थित

([1]) ए० आई० आर० 1940 मुम्बई 65.

विचारों के आधार पर दी जाती है और यह कि ऐसा मौका तभी दिया जाए जब यह दर्शित किया गया हो सम्पत्ति से कोई आय उत्पन्न नहीं होती है, ऐसा तथ्य जो दर्शित करता हो कि प्राक्कलित मूल्य गलत पाया गया था, कर की प्रकृति नहीं बदल जाती है।"

विद्वान् न्यायाधीश ने अपने समक्ष यह प्रश्न रखते हुए कि क्या यह कर आस्तियों के मूलधन पर कर है निम्नलिखित मत प्रकट किया—

"क्रमश: मद 54 और 55, में प्रयुक्त भाषा के विश्लेषण से यह दलील देने का रास्ता खुल जाता है किन्तु क्या दलील उचित है या नहीं मेरी राय में यह कहना असम्भव है कि यह कर, यद्यपि यह भूमियों और भवनों पर कर है, तथापि यह भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य पर कर है। यह मूलधन मूल्य के साथ किसी सम्बन्ध के बिना अधिरोपित किया जाता है सिवाय वहां तक जहां ऐसा मूल्य कर योग्य मूल्य के प्रति निर्देश से अभिनिश्चित किया जा सकता है।"

न्यायाधिपति ब्रूमफील्ड ने 'मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति का अर्थ क्या है यह अभिनिश्चित करने का प्रयत्न किया था और उसने यह कहा—

"उस मद (मद 55) में आस्तियों के मूलधन मूल्य से क्या अभिप्रेत है वह किसी भी प्रकार से स्पष्ट नहीं है और जो दलील दी गई थी उससे उस विषय पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। ऐसा हो सकता है कि जो कुछ आशयित है वह आस्तियों के कुछ मूल्य पर, जो कि उसकी बाजार कीमत प्रकट होगी, कर है। स्पष्टत:........उस पर अनेक बातों का, अर्थात् ऐसे बन्धकों और प्रभारों का, जिनका आक्षेपित कर ध्यान नही रखता, प्रभाव पड़ेगा। × × × कर के आवश्यक स्वरूप को विधिक दृष्टि से देखते हुए मेरा यह विचार है कि उसे भूमियों और भवनों पर कर के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो कि स्वामित्व पर स्वामियों की हैसियत से अधिरोपित किया जाता है और कुछ-कुछ मनमाने ढंग से किन्तु अनुचित स्तर से नहीं, निर्धारित किया जाता है, जो न तो निर्धारिती की आय पर और न ही सम्पत्तियों के मूलधन मूल्य पर निर्भर करता है।"

न्यायाधिपति केनिया का यह विचार है कि आक्षेपित कर की प्रकृति ऐसी नहीं है कि वह सूची 1 का मद 55 का अतिक्रमण करे; उस मद के अधीन कर कुल पूंजी आस्तियों पर कर होना चाहिए न कि व्यक्तियों के मूलधन के कुछ भाग पर।

159. **नगर निगम** बनाम **गोवर्धनदास**(1) में अहमदाबाद नगर निगम द्वारा खुली भूमियों पर रेट के सम्बन्ध में विरचित नियम 350-ए पर यह आक्षेप किया गया था कि वह अधिकारातीत है। इस नियम में खाली भूमियों को कर योग्य—क्षेत्र अवधारित करने की रीति की गई है और उसमें यह उपबन्धित है कि इस प्रकार अवधारित खाली भूमि के क्षेत्र की कीमत की दर पर कर मूलधन पर आधारित मूल्यांकन का एक प्रतिशत उद्गृहीत किया जाएगा और 'तत्पश्चात् उपबन्धित छूटों' के अध्यधीन रहते हुए वह उसी प्रकार प्रभारित किया जाएगा। नियम 243 में मूलधन पर आधारित मूल्यांकन की बात कही गई

---

(1) ए० आई० आर० 1954 मुम्बई 188.

है और उसमें यह अधिकथित है कि मूलधन पर आधारित मूल्यांकन भवनों और भूमियों का मूलधन-मूल्य (कैपिटल वैल्यू) होगा जैसा कि नगरपालिका के उन मूल्यांकन-कर्ताओं द्वारा समय-समय पर अवधारित किया जाए जिन्हें ऐसे विश्वसनीय आंकड़ों पर विचार करना होता है जैसा कि स्वामी या अधिभोगी या तो स्वयं या ऐसा करने के लिए कहे जाने पर प्रस्तुत करें। दोनों पक्षकारों का एक ही आधार था कि निगम ने 1925 के बॉम्बे ऐक्ट 18 की धारा 73 के अधीन कर या रेट अधिरोपित करने की अपनी अधिकारिता व्युत्पन्न की। उस धारा की उपधारा (1) में नगरपालिका को ऐक्ट के प्रयोजनों के लिए म्युनिसिपल बरो के भीतर स्थित भवनों या भूमियों या दोनों पर रेट अधिरोपित करने के लिए सशक्त किया गया है। उपधारा (2) में परिसीमा के लिए उपबन्ध किया गया है कि इस धारा की कोई बात किसी ऐसे कर के अधिरोपण को प्राधिकृत नहीं करती है जिसे राज्य विधान मण्डल को गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 के अधीन सूची 1 की प्रविष्टि 55 के अधीन अधिरोपित करने की कोई शक्ति नहीं है। निगम ने यह दलील दी कि प्रश्नगत रेट पूंजी उद्ग्रहण की कोटि में नहीं आता है किन्तु वह खुली भूमि पर एक रेट है और मूलधन के मूल्य का उपयोग केवल साधन या तन्त्र के रूप में किया गया था जिससे कि नगर निगम उक्त खुले प्लाट पर युक्तियुक्त रेट उद्गृहीत करने के लिए समर्थ हो सके। इसके समर्थन में निगम ने म्युनिसिपल बरोज़ ऐक्ट की धारा 75 के स्पष्टीकरण का अवलम्ब किया जिसमें कर अधिरोपित करने के लिए प्रारम्भिक प्रक्रिया अधिकथित की गई है। उसमें यह उपबन्धित है कि कर अधिरोपित करने से पूर्व नगरपालिका साधारण बैठक में पारित संकल्प द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ (iii) भवनों या भूमियों पर या दोनों पर रेट की दशा में मूल्यांकन के हर एक वर्ग का ऐसा आधार, जिस पर कि ऐसा रेट अधिरोपित किया जाना है, विनिर्दिष्ट करेगी; और उस धारा के स्पष्टीकरण में यह जोड़ा गया है कि भूमियों की दशा में मूल्यांकन का आधार या तो मूलधन या वार्षिक भाटक मूल्य हो सकता है। नगर निगम के अनुसार नियम 350-ए से जो कुछ करना तात्पर्यित था वह यह है कि खुली भूमियों पर रेट उद्गृहीत करने के लिए मूल्यांकन के आधार के रूप में मूलधन मूल्य को अपनाया जाए। कर की विधिमान्यता को कायम रखते हुए न्यायाधीश गजेन्द्रगडकर ने (जैसे कि वे उस समय थे) यह कहा (देखिए पृष्ठ 191)—

> "× × × प्रान्तीय विधानमण्डल को भूमियों पर कर उद्गृहीत करने की शक्ति प्रदान की गई है। सूची 2 की प्रविष्टि 42 से, जो प्रान्तीय विधानमण्डल पर यह शक्ति प्रदत्त करती है, परिसीमा के कोई निबन्धन अन्तः स्थापित नहीं किए गए हैं और उसमें कोई ऐसी विशिष्ट रीति उपबन्धित नहीं की गई है जिसमें कर उद्गृहीत किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय विधानमण्डल की भूमियों पर कर उद्गृहीत करने की शक्ति अनुपयुक्त और आत्यन्तिक है। प्रस्तुत मामले में खुली भूमियों पर कर उद्गृहीत करने के लिए नगर निगम की शक्ति का विस्तार स्थानीय विधानमण्डल की शक्ति के विस्तार के समान है। × × × × यदि इस आधार को अपना लिया जाए तो अपरिहार्य परिणाम यह होगा कि जो रेट अन्ततोगत्वा उद्गृहीत किया जाता है वह पूंजी उद्ग्रहण की कोटि में आता है और इसलिए

1971(10) eILR(PAT) SC 1

शक्तिबाह्य है, वह अभिनिर्धारित करना आवश्यक होगा कि न केवल नियम 350-ए शक्तिबाह्य है बल्कि धारा 75 का स्पष्टीकरण भी शक्तिबाह्य है।"

किन्तु न्यायाधिपति गजेन्द्रगडकर ने ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं समझा क्योंकि उनका यह मत था कि—

"किसी ऐसे रेट या कर के, जो भूमि के मूलधन मूल्य के आधार पर उस भूमि पर उद्गृहीत किया जाता है, और किसी ऐसे कर के, जो भूमि को आस्ति मानते हुए उसके मूलधन मूल्य पर उद्गृहीत किया जाता है, बीच अन्तर अवश्य किया जाना चाहिए।"

उन्होंने आगे यह कहा—

"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कराधान प्राधिकारी के लिए यह निश्चित रूप से विधिसम्मत है कि वह सम्पत्ति के वास्तविक मूल्य से उसका कर सहबद्ध करने का प्रयत्न करे। नगरपालिका सभी भवनों पर एक समान कर उद्गृहीत कर सकती है; इसी प्रकार नगरपालिका सभी भूमियों पर एकसमान कर उद्गृहीत कर सकती है। लेकिन नगरपालिका भूमियों के क्षेत्रों और भवनों के आकार और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए ऐसे कराधान को युक्तियुक्त बनाने का प्रयास कर सकती है किन्तु जब नगरपालिका इन सुसंगत तथ्यों को ध्यान रखने के लिए उपबंध करती है तब नगरपालिका अपने कराधान को युक्तियुक्त, न्यायसम्मत और साम्या-जनक बनाने का प्रयास ही करती है। केवल उसी दृष्टिकोण से, भूमियों की दशा में, अहमदाबाद नगर निगम ने ऐसे कर की दर, जोकि उन खुली भूमियों पर उद्गृहीत की जानी चाहिए, अवधारित करने के लिए, खुली भूमियों के मूलधन मूल्य को आधार बनाने का निश्चय किया है।"

विद्वान् न्यायाधीश ने इस बात पर भी विचार किया कि किसी प्रकार केन्द्रीय विधानमण्डल आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर उद्गृहीत कर सकता है। उसने यह मत व्यक्त किया—

"यदि प्रश्नगत आस्ति भूमि हो तो संदर्भ के अनुसार उसका वास्तविक मूलधन मूल्य उन विल्लंगमों को, जिनके अध्यधीन वह भूमि हो, और अन्य दायित्वों को, जो उसके विरुद्ध प्रवर्तनीय हों, ध्यान में रखने के पश्चात् अवधारित किया जाएगा × × × × जब नगर निगम एक ही सम्पत्ति पर, उसे भूमि के रूप में मानते हुए, कर उद्गृहीत करता है तब उसकी स्थिति वैसी या उसी प्रकार की नहीं होती। नगर-निगम भूमि के मूल्य को उन विल्लंगमों के जिनके अध्यधीन वह भूमि हो, प्रति निर्देश किए बिना, लेखा में ले सकता है और इस प्रकार अवधारित भूमि के मूल्य पर रेट उद्गृहीत कर सकता है। दूसरे शब्दों में नगरपालिक रेट या कर का प्रश्नगत आस्ति से वास्तविक आर्थिक मूलधन मूल्य अवधारित करने से कोई सम्बन्ध नहीं होगा बल्कि उसका सम्बन्ध आर्थिक अर्थ में उसके वास्तविक मूलधन मूल्य के अलावा भूनि का बाज़ार मूल्य पता लगाना और उस पर कर उद्गृहीत करना होगा। इस प्रकार नगर निगम द्वारा नियम 350-ए के अधीन अवधारित खुली भूमि का मूलधन मूल्य सदा या आवश्यक रूप से वैसा नहीं होगा जैसा कि उस भूमि का मूलधन मूल्य होता है यदि वह सूची 1 की मद 55 के अधीन कोई

1971(10) eILR(PAT) SC 1

कर उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा अवधारित किया गया हो ।"

किन्तु विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि कुछ मामलों में मूलधन मूल्य सूची 1 की प्रविष्टि 55 के अन्तर्गत आने वाले मामलों में और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत आने वाले मामलों में वही हो सकता है । विद्वान् न्यायाधिपति व्यास ने यह कहा—

"मद 55 के संदर्भ में आस्तियों के मूलधन मूल्य से उन विल्लंगमों को ध्यान में रखते हुए, जिनके अध्यधीन भूमियां हों, वास्तविक मूलधन मूल्य अभिप्रेत है। यदि किसी भूमि का बाज़ार मूल्य 10,000 रुपये है और वह 15,000 रुपये के बन्धक के अध्यधीन है तो स्वामी को केवल मोचन साम्या (इक्यूटी आफ रिडेम्पशन) का अधिकार प्राप्त होता है। उसका मूल्य मात्रा को घटा कर निकाला जाता है। ऐसी आस्ति सम्भवत: सूची 1 की प्रविष्टि 55 के अधीन कर के उद्ग्रहण के लिए दायी नहीं हो सकती। फिर भी स्वामी प्रविष्टि 42 के अधीन नगरपालिका द्वारा उक्त भूमि पर कर के उद्ग्रहण से उन्मुक्त नहीं होगा क्योंकि नगरपालिका को इससे कोई सम्बन्ध नहीं हैं कि क्या भूमि विल्लंगमित है या विल्लंगमित नहीं है।"

यह बात ध्यान देने की है कि उपरोक्त विनिश्चय इस न्यायालय से अपील करने पर अपास्त कर दिया गया था किन्तु इस न्यायालय के निर्णय में ऐसी कोई बात नहीं है जो उच्च न्यायालय द्वारा 'मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति के निर्वचन के विरुद्ध हो । इस न्यायालय के न्यायाधीशों का बहुमत इस तथ्य पर आधारित था कि 'रेट' शब्द का ऐक्ट में कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया है और जब यह उपबन्धित किया गया है कि खुली भूमियों की दशा में मूल्यांकन का आधार या तो मूलधन या वार्षिक भाटक मूल्य होगा, 'तो उन शब्दों के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह रेटों के उद्ग्रहण के सम्बन्ध में इंग्लैंड में प्रचलित मूल्यांकन की सुविदित पद्धति के प्रति निर्देश करते हैं और उन्हें ऐसे नहीं पढ़ा जा सकता कि उससे स्वयं मूलधन मूल्य की प्रतिशता अभिप्रेत है—**पटेल गोवर्धनदास हरगोविन्ददास** बनाम **नगरपालिक आयुक्त, अहमदाबाद**(1) ।

160. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रविष्टि 49 के बारे में सदा यह समझा जाता रहा है कि उसमें यूनिटों के रूप में भूमियों और भवनों, दोनों पर कर का उद्ग्रहण अनुध्यात है। जैसा कि **नगर भूमि कर सहायक आयुक्त, मद्रास** बनाम **बंकिघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड**(2) में संकेत किया गया था—

"सूची 2 की प्रविष्टि 49 में कर का उद्ग्रहण भूमियों और भवनों पर अथवा इकाई के रूप में दोनों पर परिकल्पित है। जिन भूमियों या भवनों पर कर लगाया जाता है उनकी इकाइयों में हित या स्वामित्व के विभाजन के साथ कोई सरोकार नहीं है। भूमियों और भवनों पर कर भूमियों और भवनों पर सीधे सीधे अधिरोपित किया जाता है और उनके साथ उसका निश्चित सम्बन्ध होता है। × × × सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर उद्गृहीत करने के प्रयोजन के

(1) (1964) 2 एस० सी० आर० 608, 632.

(2) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.

लिए राज्य विधानमण्डल कर का भार अवधारित करने के प्रयोजन के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपना सकता है।"

इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मद्रास अर्बन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1966 (1966 का 12) सारतः ऐसा ऐक्ट था जिसके द्वारा नगर भूमि पर बाज़ार मूल्य की प्रतिशतता पर कर अधिरोपित किया गया था और वह सूची 2 की प्रविष्टि 49 की परिधि के भीतर आता है। इस प्रविष्टि के इतिहास का उस निर्णय में भी पता लगाया गया था और यह विनिर्धारित किया गया था कि "प्रविष्टि 49 भूमियों और भवनों पर कर' का "अर्थान्वियन भूमियों पर कर और भवनों पर कर के रूप में किया जाना चाहिए।"

161. इस बात पर ध्यान देना अनुचित नहीं होगा कि पंजाब अर्बन इम्मूवेबल प्रापर्टी टैक्स ऐक्ट, 1940 की जिसमें कुछ उसी प्रकार के उपबन्ध थे, विधिमान्यता पर **राल्ला राम** बनाम **ईस्ट पंजाब प्रान्त** में ([1]) भारत के फैडरल न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। उस मामले में प्रभारी धारा (धारा 3) में ऐक्ट की अनुसूची में दर्शित कर योग्य क्षेत्र में स्थित भवनों और भूमियों पर वार्षिक कर का ऐसा भवनों और भूमियों के वार्षिक मूल्य के बीस प्रतिशत से अनधिक विहित दर पर उद्ग्रहण और संदाय के लिए उपबंध किया गया है। धारा 5 में यह अधिकथित किया गया है कि किसी भूमि या भवन का वार्षिक मूल्य, उस सकल वार्षिक भाटक के, जिस पर ऐसी भूमि या भवन के युक्तियुक्त रूप से वर्ष प्रति वर्ष भाटक पर दिए जाने की आशा हो, प्राक्कलन द्वारा और उसमें से कुछ मोक घटा कर अभिनिश्चित किया जाना था। जिन आधारों पर तर्क दिया गया था उनमें से एक आधार यह भी था कि आक्षेपित कर सारतः आय पर कर है और ऐसा होने के कारण सूची 1 की प्रविष्टि 54 न कि सूची 2 की प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत आता है। ऊपर वर्णित दलील को नामंजूर करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था—

"ऐक्ट पर सम्पूर्ण रूप से विचार किया जाना होता है और भवनों का वार्षिक मूल्य अवधारित करने के लिए इसमें जो विस्तृत उपबंध किए गए हैं उनको और इस तथ्य को कि शासकीय राजपत्र में नियत वास्तविक दर का वार्षिक मूल्य के प्रति प्रत्यक्ष निर्देश है, ध्यान में रखते हुए इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि कर का आधार वार्षिक मूल्य है।"

न्यायालय ने आगे यह कहा (देखिए पृष्ठ 220)—

"× × × जब एक बार यह समझ लिया जाता है कि वार्षिक मूल्य आवश्यक रूप से वास्तविक आय नहीं होता बल्कि वह केवल एक ऐसा मापदण्ड होता है जिसके द्वारा आय को नापा जाता है तो जो ऊपर से कठिनाई प्रतीत होती है वह दूर हो जाती है। हमारी राय में जिस उत्कट प्रश्न का उत्तर दिया जाना है वह यह है कि क्या केवल इसलिए कि आयकर अधिनियम में आय अवधारित करने के लिए वार्षिक मूल्य को मापदण्ड के रूप में अपनाया गया है, आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलना चाहिए कि यदि वही मापदण्ड किसी अन्य कर के लिए उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है तो वह कर आय पर कर बन जाता है।"

([1]) (1948) एफ० सी० आर० 207.

विधान के सार और तत्व पर विचार करते हुए न्यायालय ने यह कहा कि (देखिए — पृष्ठ 224)—

"लेकिन आक्षेपित ऐक्ट में कोई ऐसी बात नहीं है जो यह दर्शित करती हो कि विधानमण्डल की ओर से कोई ऐसा आशय था कि भवन से स्वामी की आय मालूम की जाए या उस पर कर लगाया जाय। × × × वार्षिक मूल्य, जैसे कि बताया जा चुका है, अधिक-से-अधिक सिद्धान्तिक या काल्पनिक आय ही हो सकती है न कि वास्तविक आय। यह तो केवल एक ऐसा मापदण्ड है जिसका प्रयोग आय-कर अधिनियम में आय निकालने के लिए किया जाता है, किन्तु प्रान्तीय कर के निर्धारण के लिए उसी मापदण्ड के प्रयोग को बर्जित करने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। यदि कर सम्पत्ति पर उद्गृहीत किया जाना हो तो उसे सम्पत्ति के मूल्य से उसे सहबद्ध करना और आय पर कर लगाने के आशय के बिना कर के आधार पर किसी प्रकार का वार्षिक मूल्य निकालना अयुक्तियुक्त नहीं होगा।"

न्यायालय का अन्तिम निष्कर्ष यह था कि आक्षेपित कर आय पर तात्विक रूप में कर नहीं था।

162. जब धन-कर अधिनियम की, जैसा कि वह मूलतः अधिनियमित किया गया था, विधिमान्यता पर इस न्यायालय में बहस की गई थी उससे पूर्व इस विषय पर अनेकों उच्च न्यायालयों ने विचार किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन विनिश्चयों के व्यूह में मुख्यतया और कभी-कभी एकमात्र प्रश्न यह उठाया गया था कि क्या संघ संसद ऐसा उपाय अधिनियमित कर सकती है जो हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों पर दायित्व अधिरोपित करेगा जब कि प्रविष्टि 86 में 'व्यष्टियों' और 'कम्पनियों' पर कर के अधिरोपण के लिए उपबंध किया गया है। कालानुसार मुख्य विनिश्चय इस प्रकार हैं—**महावीर प्रसाद बद्रीदास यज्ञिक बनाम द्वितीय धनकर अधिकारी** (1) में मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशनर ने यह दलील दी—'उस सीमा तक जहां तक संघ संसद ने हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब पर यूनिटों के रूप में धन-कर का उद्ग्रहण प्राधिकृत किया है वहां तक विधान शक्तिबाह्य है' और उस दलील के समर्थन में प्रविष्टि 86 का अवलम्बन किया गया था। इस निवेदन से यह उपधारणा की गई थी कि धन-कर का उद्ग्रहण प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है। पिटीशनर की इस दलील का खंडन न्यायाधिपति शाह (जैसे कि वे उस समय थे) द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए किया गया कि विधान के विषय की परिभाषा करते हुए 'व्यष्टियों' शब्द के प्रयोग के अन्तर्गत व्यष्टियों का संगम आता है लेकिन यह बात ध्यान देने की है कि भारण संघ की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील दी थी कि यदि यह उपधारणा कर भी ली जाए कि सप्तम् अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा संघ संसद को हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों की आस्तियों पर धन-कर उद्ग्रहण करने के लिए विधान करने की शक्ति विनिहित नहीं की गई थी तो भी संघ संसद संविधान के अनुच्छेद 248 द्वारा और सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 97 द्वारा प्राधिकार से विनिहित थी। निर्धारिती की ओर से यह निवेदन किया गया था कि 'जहां संविधान ने किसी प्रसंग पर विधान करने की शक्तियों की परिभाषा करते हुए परिसीमा के शब्दों को मिलाकर विधान अधिनियमित करने की संसद की सक्षमता पर अभिव्यक्त रूप से

(1) (1959) 37 आई० टी० आर० 191.

निर्बन्धन लगाया है, वहां अनुच्छेद 248 और सूची 1 की प्रविष्टि 97 में अन्तर्विष्ट अव-शिष्ट शक्तियों का अवलम्ब लेते हुए उस निर्बन्धन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। न्याया-धिपति शाह ने इस दलील पर विचार-विमर्श करके यह मत व्यक्त किया—

> "प्रविष्टि 86 में 'व्यष्टि' अभिव्यक्ति का निर्वचन करने पर मैंने जो दृष्टिकोण अपनाया है उससे मेरे विचार से यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रश्न पर कोई राय अभिव्यक्त की जाए कि क्या संघ संसद की अवशिष्ट शक्तियों में ऐसे प्रसंग पर, जिस पर प्रथम सूची में किसी विनिर्दिष्ट प्रविष्टि द्वारा भागतः विचार किया गया है, विधान करने की शक्ति के बारे में यह समझा जाए कि वह उसके अन्तर्गत है।"

विद्वान् न्यायाधिपति देसाई ने भी उसी प्रकार के मत व्यक्त किए। **एन० वी० सुब्रामणियम बनाम धन-कर अधिकारी** (1) में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब द्वारा ऐक्ट की विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी। सही-सही दलील यह थी "कि प्रत्यर्थी धनकर अधिनियम, 1957 के उपबन्धों के अधीन किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के सम्बन्ध में इस आधार पर कोई कार्रवाई नहीं कर सकता कि अधिनियम, जहां तक कि वह हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का आस्तियों के मूलधन मूल्य पर धनकर के उद्ग्रहण और संग्रहण के लिए समर्थ करता है, वहां तक वह संघ संसद की विधायी सक्षमता के बाहर है।" ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं उठाया गया था कि क्या धनकर प्रविष्टि 86 के अधीन उद्ग्रहण का विषय हो सकता है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया (पृष्ठ 571)—

> "जिस मुख्य प्रश्न पर अवधारण किया जाना है वह यह है कि क्या प्रविष्टि 86 में 'व्यष्टि' अभिव्यक्ति के अन्तर्गत हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब समाविष्ट हो सकता है।"

महाबीर प्रसाद के मामले (2) में इन्कम टैक्स ऐक्ट, 1922 की धारा 3 में 'व्यष्टि (इन्डि-विजूअल)' अभिव्यक्ति का जो निर्वचन किया गया था उसका उल्लेख किया गया है। उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त विनिश्चयों का सिद्धान्त प्रविष्टि 86 में 'व्यष्टि' के अर्थान्वयन को लागू होता है। यद्यपि न्यायालय ने यह कहा था कि अधिरोपण का समर्थन करने के लिए धनकर अधीकारी की ओर से सूची 1 की प्रविष्टि 97 का अवलम्बन किया गया था, तथापि मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि उक्त प्रविष्टि के लागू होने की बात की परीक्षा की जाए।

163. **पी० रामभद्र राजू बनाम भारत संघ** (3) में उसी उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न फिर उठा और उसका उत्तर इसी प्रकार दिया गया था। निर्धारिती की ओर से दलील इस उपधारणा के आधार पर दी गई थी कि धनकर का उद्ग्रहण करने के लिए प्रविष्टि 86 सुसंगत प्रविष्टि है किन्तु वह हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के मामले को लागू नहीं होती।

---

(1) 40 आई० टी० आर० 567.

(2) (1959) 37 आई० टी० आर० 191.

(3) 45 आई० टी० आर० 118.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

164. **सी० के० मम्मद केयी बनाम धनकर अधिकारी** ([1]) में निर्धारिती ने अपनी दलील के आरम्भ में ही यह कहा कि 'संसद्' संघ सूची की प्रविष्टि 86 के अधीन हिन्दू विभक्त कुटुम्बों और माप्पिला मरुमक्कतायम् तरवाडों की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर और किसी व्यक्ति की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर भी उस सीमा तक, जहां तक कि उनके बारे में यह नहीं समझा जाता है कि वे कृषि आय से हैं धन-कर कहा जाने वाला कर अधिरोपित करने के लिए सक्षम नहीं है'। ऐक्ट के भिन्न-भिन्न उपबन्धों की परीक्षा करते हुए न्यायाधीश वेलु पिल्लई ने यह मत व्यक्त किया (देखिए पृष्ठ 282)—

> "इससे हमारे मन में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि कर का सार या उस की सही प्रकृति और स्वरूप यह है कि वह 'आस्तियों पद की अन्तर्वस्तु के रूप में विनिर्दिष्ट संवर्धनों और अपवर्जनों के अध्यधीन, आस्तियों के मूलधन मूल्य पर उद्ग्रहण है कृषि भूमियां अपवर्जनों में से एक अपवर्जन है। इस सीमा तक धन-कर विनिर्दिष्टतया और सारतः संघ सूची की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है।"

विद्वान् न्यायाधीश ने इस दलील को स्वीकार करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं की कि 'भूमियां और भवन' आस्तियों का भाग बन सकते हैं और यह कि राज्य सूची की प्रविष्टि 49 के अर्थान्तर्गत 'भूमियों और भवनों पर कर' के अन्तर्गत उनके मूलधन मूल्य के आधार पर उन पर कर आ सकता है। विद्वान् न्यायाधीश ने यह कहा कि—

> "भूमि कर भूमि के वार्षिक या मूलधन या विक्रय मूल्य से सम्बन्धित हो सकता है।"

उनके अनुसार—

> "भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य के आधार पर उन पर कर के बीच और भूमियों और भवनों को आस्तियों की एक मद के रूप में मानने से स्वयं ऐसे मूलधन मूल्य पर कर के बीच (अर्थात् प्रविष्टि 86 और प्रविष्टि 49 के बीच) जो वास्तविक और महत्वपूर्ण अन्तर है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

उन्होंने आगे यह मत व्यक्त किया—

> "उस कर की दशा में जिसका आधार या उद्देश्य भूमियां और भवन हैं, उनका वार्षिक या मूलधन मूल्य उद्ग्रहण की न्यायोचितता या युक्तियुक्तता को सुनिश्चित करने के लिए अपनाया गया उपाय या मापदण्ड है कि किन्तु मूलधन मूल्य पर कर की दशा में ऐसा मूल्य स्वयं उद्ग्रहण का आधार या उद्देश्य है।"

विद्वान् न्यायाधीश के अनुसार प्रविष्टि 86 और प्रविष्टि 49 के अधीन अधिरोपणों की अतिव्याप्ति हुई है क्योंकि उनके दृष्टिकोण में—

> "भूमियों और भवनों के, उन्हें आस्तियां मानते हुए, मूलधन पर कर अधिरोपित करने की विधायी शक्ति को संघ सूची की प्रविष्टि 46 के अन्तर्गत क्षेत्र को पूर्णतया आवंटित करने से, जैसी कि दलील दी गई है, राज्य सूची की प्रविष्टि

([1]) 44 आई० टी० आर० 277.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

49 से उसकी अन्तर्वस्तु को छीनना नहीं है क्योंकि राज्य सूची की प्रविष्टि 45 से प्रविष्टि 48 के अधीन, जिनका भवनों या भूमियों या दोनों से कुछ सम्बन्ध है, करों को अपवर्जित करने से भूमियों और भवनों पर अन्य करों का विधान बनाने के लिए प्रविष्टि 49 के अधीन तब भी क्षेत्र खुला रहता है × × × अत: प्रश्नगत दोनों प्रविष्टियों के मामले में अधिकारिता का कोई विरोध और कोई अतिव्याप्ति नहीं है ।"

विद्वान् न्यायाधीश का यह भी दृष्टिकोण था कि—

" × × × प्रविष्टि 49 के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह भूमियों और भवनों पर करों के लिए साधारण उपबन्ध है और प्रविष्टि 86 का सहारा लेना चाहिए, जिसके बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह किसी विशिष्ट कर के लिए विशेष उपबन्ध है, आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर है ।"

मामले के दूसरे पहलू पर अर्थात् किसी निर्धारिती के शुद्ध धन पर उस सीमा तक कर जिसके बारे में यह कहा जाता है या कहा जा सकता है कि वह उसकी कृषि आय से हुआ है और ऐसा होने के कारण उसका सम्बन्ध राज्य सूची की प्रविष्टि 46 के क्षेत्र से है, विद्वान् न्यायाधीश ने यह संकेत किया कि ऐक्ट की प्रभारी धारा का तात्पर्य किसी भी प्रकार की आय पर कर लगाना नहीं है बल्कि केवल निर्धारिती के शुद्ध धन पर कर लगाना है जैसा कि उसकी आस्तियों के निबन्धनों में परिभाषित है । विद्वान् न्यायाधीश ने मुम्बई और आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों के दृष्टिकोण से अपनी सहमति प्रकट की कि हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब एक ऐसी सत्ता नहीं है जो उस कुटुम्ब में समाविष्ट सदस्यों से सुभिन्न और पृथक् है और वह प्रविष्टि 86 में 'व्यक्तियों' पद के अर्थबोध के भीतर आती है । इस दृष्टिकोण से विद्वान् न्यायाधीश ने विभाग की ओर से जो वैकल्पिक तर्क दिया गया था उस पर विचार करना आवश्यक समझा कि यदि प्रविष्टि 86 लागू न भी होती हो तो भी अधिनियम संघ सूची की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 द्वारा व्यावृत्त है ।

165. जहां तक कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय का सम्बन्ध है उल्लेखनीय निर्णय तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का निर्णय है—**जुगल किशोर** बनाम **धन-कर अधिकारी**(1) न्यायाधिपति गुर्टू के निर्णय से यह दर्शित होता है कि निर्धारिती की ओर से जो दलील दी गई थी वह यह थी कि प्रविष्टि 86 हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों पर अधिरोपण को न्यायोचित नहीं ठहराती है । ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिपति गुर्टू ने इस उपधारणा से कार्य आरम्भ किया कि शुद्ध धन पर कर का अधिरोपण प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आएगा किन्तु चूंकि उक्त प्रविष्टि हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब पर अधिरोपण को न्यायोचित नहीं ठहरा सकेगी इसलिए इस उपाय के विधान को न्यायसम्मत ठहराने के लिए अनुच्छेद 248 में अवशिष्ट शक्ति का सहारा लिया जा सकता है (देखिए पृष्ठ 100) । न्यायाधिपति उपाध्याय की यह राय थी कि 'जहां तक अधिनियम हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों की पूंजी आस्तियों पर कर अधिरोपित करता है वहां तक उसे संसद् के शक्तिबाह्य घोषित किया जाना चाहिए'

(1) 44 आई० टी० आर० 94.

(पृष्ठ 115)। न्यायाधीश जगदीश सहाय ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'संघ विधानमण्डल प्रविष्टि 86 के आधार पर आक्षेपित उपबंध अधिनियमित कर सकता था' और इस 'प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं था कि क्या अनुच्छेद 248 के साथ पठित प्रविष्टि 97 आक्षेपित उपबंध का समर्थन कर सकेगी' (पृष्ठ 123-124)।

166. **सरजेरो अप्पासाहिब शिटोले** बनाम **धन-कर अधिकारी** (1) में जिन तीन मुख्य प्रश्नों पर जोर दिया गया था वे थे—(i) भूमियों और भवनों पर धन-कर संसद् के शक्तिबाह्य है; (ii) किसी भी परिस्थिति के अधीन संसद् हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों पर धन-कर अधिरोपित नहीं कर सकता था; और (iii) धन-कर अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करता है। निर्धारिती की ओर से यह दलील दी गई थी कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 को इस प्रकार पढ़ा जाना होता है कि वह सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अध्यधीन है, यदि उसे इस प्रकार पढ़ा जाए तो यह मालूम होगा कि 'भूमियों और भवनों' का क्षेत्र प्रविष्टि 49 के अधीन राज्य के लिए आरक्षित है। प्रथम प्रश्न को **बालका के मामले** (2) में पूर्वतर विनिश्चय के आधार पर यह अभिनिर्धारित करते हुए नामंजूर कर दिया गया था कि कृषि भूमि से भिन्न 'भूमि' चूंकि आस्तियों का भाग है इसलिए वह प्रविष्टि 86 के प्रविषय के अन्तर्गत आती है। यह दलील दी गई थी सूची 1 की प्रविष्टि 86 संसद् को कुटुम्बों पर धन-कर उद्गृहीत करने के लिए सशक्त नहीं करती। यह प्रश्न बिद्वान् न्यायाधीशों द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए निर्धारिती के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था (देखिए पृष्ठ 376)—

> "जब कभी शक्ति के स्रोत के बारे में कोई प्रश्न उठता है तब न्यायालय का काम यह होता है कि उस शक्ति का सूचियों में से किसी एक सूची में पता चलाए। × × × जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि निर्धारिती का यह पक्षकथन नहीं है कि प्रश्नगत शक्ति या तो सूची 2 या सूची 3 में पाई जा सकती है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि संसद् को या तो प्रविष्टि 86 के अधीन या उसके अभाव में प्रविष्टि 97 के अधीन उसे दी गई अवशिष्ट शक्ति के अधीन उस विषय पर विधान करने की शक्ति प्राप्त है। इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि क्या शक्ति का स्रोत प्रविष्टि 86 में या प्रविष्टि 97 में है। अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि संसद् को अविभक्त कुटुम्बों पर धन-कर अधिरोपित करने के लिए उपबन्ध करने वाली विधि अधिनियमित करने की सक्षमता प्राप्त थी।"

167. **राजा सर एम० ए० मुथय्या चेट्टियार** बनाम **धन-कर अधिकारी** (3) में मद्रास उच्च न्यायालय को ऐसे ही प्रश्न पर विचार करना पड़ा था। उस मामले में पिटीशनर ने प्रतिषेध रिट के जारी किए जाने के लिए कहा था कि धन-कर अधिकारी को यह निदेश दिया जाए कि वह निकाली गई सूचनाओं के अनुसरण में कार्यवाहियां करने से

(1) 52 आई० टी० आर० 372.
(2) 48 आई० टी० आर० 472.
(3) 53 आई० टी० आर० 504.

प्रविरत रहे और उसी प्रकार के एक और रिट के लिए भी कहा था जिससे व्यय कर अधिकारी को अवरुद्ध किया जाए। प्रथम पिटीशन में एकमात्र प्रश्न यह था कि क्या धन-कर अधिनियम की धारा 3 संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है क्यों कि उसमें मरुम्मक्कत्तायम् तरवाडों को उसकी परिधि में से निकाल दिया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धन-कर अधिनियम की प्रभारी धारा संविधान के साम्या खण्ड की रिष्टि के अन्तर्गत नहीं आती है क्योंकि सरकार विधान के विषयों का चुनाव करने में व्यापक स्वविवेक का प्रयोग करने के लिए मुक्त है। ऊपर निर्दिष्ट केरल का मामला इस न्यायालय के समक्ष अपील में आया। उस निर्णय की रिपोर्ट 52 आई० टी० आर० 605 में की गई है अपीलों को मंजूर करते हुए और मामले को उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करते हुए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या विधायी सक्षमता से सम्बन्धित प्रथम प्रश्न सही था या सही नहीं था।

168. इलाहाबाद उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ का निर्णय, जिसका पहले ही निर्देश किया जा चुका है, **बनारसी दास बनाम कराधान अधिकारी** (1) में इस न्यायालय में विचारार्थ आया था। अपीलार्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी थी कि संसद् जिन करों को प्रविष्टि 86 के अधीन उद्गृहीत करने के लिए सशक्त थी वे केवल व्यष्टियों पर ही अधिरोपित किए जा सकते थे और यदि ये निकाय प्रविष्टि 86 के प्रविषय के बाहर थे तो वे प्रविष्टि 97 के अधीन ऐसे उद्ग्रहण के अध्यधीन नहीं हो सकते 'क्योंकि वह प्रविष्टि उन विषयों के प्रति निर्देश करती है जो सूची 1 की प्रविष्टि 1 से प्रविष्टि 96 तथा सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित विनिर्दिष्ट विषयों में भिन्न हैं और चूंकि धन-कर एक ऐसा विषय है जो विनिर्दिष्टतया प्रविष्टि 86 से प्रगणित है, प्रविष्टि 97 के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि उक्त कर उसके अन्तर्गत आता है।' अनुच्छेद 248 के सम्बन्ध में दलील यह दी गई थी कि उसे प्रविष्टि 97 के साथ पढ़ा जाना चाहिए और यदि हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों की आस्तियां मूलधन मूल्य के सम्बन्ध में धन-कर प्रविष्टि 86 और प्रविष्टि 97 के बाहर हैं तो अनुच्छेद 248 द्वारा संसद् पर प्रदत्त विधान की अवशिष्ट शक्ति की आक्षेपित उपबन्ध द्वारा हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर अधिरोपित कर के सम्बन्ध में सहायता नहीं ली जा सकती (पृष्ठ 358)।

169. धन-कर अधिकारी की ओर से यह दलील दी गई थी कि आक्षेपित उपबन्ध सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन प्राथमिकतः विधिमान्य है। विकल्पतः यह दलील दी गई थी कि प्रविष्टि 97 में, जो अवशिष्ट प्रविष्टि है, वे सब विषय आ जाएंगे जो सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित नहीं किए गए हैं जिनके अन्तर्गत उन दोनों सूचियों में से किसी में भी अवर्णित कर आता है। यह दलील दी गई थी कि प्रविष्टि 97 में वर्णित "विषय" शब्द के भीतर प्रविष्टि 86 में विनिर्दिष्ट कर नहीं आ सकते हैं, किन्तु यह उस विषय-वस्तु के प्रति निर्देश करता है जिसके सम्बन्ध में संसद् प्रविष्टि 97 के अधीन विधि बनाने का प्रयास करती है। उस मामले में अधिकतर दलीलें प्रविष्टि 86 में 'व्यक्तियों' शब्द के निर्वचन के सम्बन्ध में थीं कि क्या उस शब्द के प्रयोग से हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों पर कर का उद्ग्रहण

(1) (1965) 2 एस० सी० आर० 355.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

न्यायसम्मत था। इस न्यायालय के अनुसार—

"वह मूल उपधारणा जिस पर अपीलार्थियों की दलील आधारित है यह है कि संविधान-निर्माता हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों की आस्तियों के मूलधन मूल्य को करों से अपवर्जित करना चाहते थे। इसी कारण से उन्होंने यह दलील दी है कि आक्षेपित उपबन्ध का न तो सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन और न ही प्रविष्टि 97 के अधीन तथा न ही अनुच्छेद 248 के अधीन समर्थन किया जा सकता है।" (पृष्ठ 360)।

इस पर न्यायालय की यह प्रतिक्रिया थी—

"सकृत दर्शने यह उपधारणा करना असम्भव है कि आस्तियों के मूलधन मूल्य पर करों के उद्ग्रहण पर विचार करते समय हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों को सम्भवत: छोड़ देने का आशय था", (पृष्ठ 361)।

आगे यह कहा गया था (पृष्ठ 364)—

"संविधान-निर्माताओं को पूर्णतया यह ज्ञात था कि इस देश के हिन्दू नागरिक प्रसामान्यता हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के होते हैं और यदि उद्देश्य आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर उद्गृहीत करना था तो यह अकल्पनीय है कि 'व्यक्तियों' शब्द प्रविष्टि में उसके प्रविषय से ऐसे वृहत् और व्यापक क्षेत्र को, जो हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों के अन्तर्गत आ जाएगा, अपवर्जित करने के उद्देश्य से पुर:स्थापित किया गया था।"

तदनुसार न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'आक्षेपित धारा विधिमान्य है क्योंकि संसद् प्रविष्टि 86 के अधीन हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों के सम्बन्ध में विधान बनाने के लिए सक्षम थी।' उक्त निष्कर्ष निकालने के पश्चात् यह कहा गया था (देखिए पृष्ठ 364)—

"इस प्रश्न पर अनेक उच्च न्यायालयों ने विचार किया है और जिन विनिश्चयों की रिपोर्ट की गई है उनसे प्रविष्टि 86 के अर्थान्वयन के पक्ष में न्यायिक राय का मतैक्य है और उसे ही हमने अपनाया है।"

इसके पश्चात् मुम्बई उच्च न्यायालय, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, मैसूर उच्च न्यायालय और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया गया था जो पहले ही वर्णित किए जा चुके हैं। इस न्यायालय के अनुसार—

"X X X रिपोर्ट किए गए इन विनिश्चयों से यह दर्शित होता है कि आक्षेपित उपबन्ध की विधिमान्यता को उच्च न्यायालयों के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब एक संगम है और ऐसा होने के नाते उसकी आस्तियों के मूलधन मूल्य पर प्रविष्टि 86 के अधीन कर नहीं लगाया जा सकता।"

न्यायालय ने पृष्ठ 365 पर यह मत व्यक्त किया—

"चूंकि हमने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों के मामले आते हैं इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित उपबन्ध स्वयं उक्त प्रविष्टि के अधीन विधिमान्य है। ऐसा होने के कारण इस बात पर

विचार करना आवश्यक है कि क्या आक्षेपित उपबन्ध की विधिमान्यता का संविधान की प्रविष्टि 97 या अनुच्छेद 248 के अधीन समर्थन किया जा सकता है।"

170. यह बात ध्यान देने की है कि उस मामले में यह दलील नहीं दी गई थी कि क्या कर न कि धन 'आस्तियों के मूलधन मूल्य' प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है बल्कि दलील यह दी गई थी कि क्या उन 'व्यक्तियों' के, जिन पर उस प्रविष्टि के अधीन भार पड़ना था, अन्तर्गत हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब आते हैं और इस न्यायालय से वस्तुत: यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि वह मामले के इस पहलू की परीक्षा करे।

171. **सुधीर चन्द्र नॉन बनाम धन-कर आफिसर** (1) में दलील का सार यह था कि धन कर केवल वित्तीय वर्ष के दौरान धन की वृद्धि पर ही प्रभार्य था और यह कि संसद् का यह आशय नहीं था कि उन्हीं आस्तियों पर वर्ष प्रति वर्ष कर प्रभारित किया जाता रहे। यह बात ध्यान देने की है कि इस न्यायालय में फाइल किए गए रिट पिटीशन में निर्धारिती ने यह दलील नहीं दी थी कि शुद्ध धन पर कर प्रविष्टि 86 या संघ सूची की किसी अन्य प्रविष्टि के अधीन 1957 के अधिनियम के अधीन प्रभार्य नहीं था और स्वभावत: इस न्यायालय के लिए उस प्रश्न पर विचार करने का कोई अवसर ही नहीं था जैसा कि उस निर्णय के पृष्ठ 797-798 के उद्धरण से स्पष्ट है—

> "संसद् ने धन-कर अधिनियम का अधिनियमन संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन प्राप्त शक्ति का प्रयोग करते हुए किया था × × × 'व्यक्तियों और समवायों की आस्तियों में से कृषि भूमि को छोड़कर उसके मूलधन मूल्य पर कर, समवायों के मूलधन पर कर। **बनारसी दास बनाम धन कर अधिकारी, विशेष सर्किल, मेरठ** (2) में इस न्यायालय ने जो विनिश्चय किया था उसमें उसके बारे में यही धारणा की गई थी और अर्जीदार के काउन्सेल ने यह स्वीकार किया था कि धन-कर अधिनियम का विषय सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 के पदों के अन्तर्गत आता है। किन्तु उसने यह भी कहा है कि चूंकि 'शुद्ध धन 'अभिव्यक्ति के अन्तर्गत निर्धारिती की कृषि-भिन्न भूमियां और भवन आते हैं तथा भूमियों और भवनों पर कर का उद्ग्रहण करने की शक्ति का सप्तम अनुसची की सूची 2 की प्रविष्टि 49 द्वारा राज्य विधानमण्डलों के लिए आरक्षण किया गया है। अत: संसद् ऐसी आस्तियों के, जिनके अन्तर्गत कृषि-भिन्न भूमियां और भवन आते हैं, मूलधन मूल्य पर धन कर का उद्ग्रहण करने के लिए विधान बनाने के लिए सक्षम नहीं है।"

लेकिन न्यायालय ने इस बात को नामंजूर कर दिया और यह मत व्यक्त किया—

> "सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 86 द्वारा जो कर अधिरोपित है वह सीधे भूमियों और भवनों पर लगाने वाला कर नहीं है। यह तो वह कर है जो मूल्यांकन की तारीख को व्यष्टियों और कम्पनियों की आस्तियों के मूलधन

---

(1) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

(2) 56 आई० टी० आर० 224.

मूल्य पर अधिरोपित है। यह कर निर्धारिती की आस्तियों के संघटकों पर अधिरोपित नहीं किया जाता है; यह तो उन कुल आस्तियों पर अधिरोपित किया जाता है जो निर्धारिती के स्वामित्व में होती हैं तथा शुद्ध धन का अवधारण करने में न केवल उन विल्लंगमों को, जो आस्तियों की किसी मद के मद्धे विनिर्दिष्टतया प्रभारित हैं बल्कि अपने ऋण अदा करने और अपनी विधिपूर्ण बाध्यताओं के उन्मोचन के लिए निर्धारिती के साधारण दायित्व को भी लेखे में लेना पड़ता है। कुछ ऐसे अपवादिक मामलों में, जिनमें व्यक्तियों पर ऋणों की कोई देनदारी न हो और अपनी आस्तियों में से किसी दायित्व के निर्वहन के लिए जो किसी प्रवर्तनीय बाध्यता के अधीन न हो ऐसा करना सम्भव है कि कुल आस्तियों पर उद्ग्रहणीय कर का संघटकों में संभाजन कर दिया जाए और यह मान लिया जाए कि निर्धारिती के स्वामित्वाधीन वाली भूमियाँ और भवन एक संघटक हैं। ऐसी दशा में कुल कर में से वह संघटक, जिसे भूमियों और भवनों पर लगा हुआ माना जा सकता है, संगणना के मामले में भूमियों और भवनों पर लगे उस कर के समान हो सकता हैं जो सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन मूलधन या वार्षिक मूल्य पर उद्गृहीत किया जाता है। किन्तु संसद् के विधायी प्राधिकार का अवधारण इस बात पर विचार करके नहीं किया जा सकता कि ऐसी आपवादिक दशा भी हो सकती है जिनमें दो भिन्न-भिन्न शीर्षों के अधीन ऐसे कर लगे हों जिनका कि करदाताओं पर एक जैसा प्रभाव पड़ता हो।''

न्यायालय ने आगे यह कहा हो—

''इसके बजाय सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 49 में तो भूमियों और भवनों या दोनों पर यूनिटों के रूप में कर का उद्ग्रहण किया जाना अनुध्यात है। इस प्रविष्टि का सम्बन्ध सामान्यतया उन भूमियों या भवनों के, जिन पर कि कर लगाया जाता है, यूनिटों में हित या स्वामित्व के विभाजन से नहीं है। भूमियों और भवनों पर कर तो सीधे भूमियों और भवनों पर ही अधिरोपित किया जाता है और ऐसे कर का उनसे एक निश्चित सम्बन्ध होता है। आस्तियों के मूलधन मूल्य पर लगे कर का उन भूमियों और भवनों से कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता जो निर्धारिती की कुल आस्तियों के कोई संघटक हों। सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन वाली शक्ति के प्रयोग में विधान बना कर कर के बारे में यह अनुध्यात किया जाता है कि वह आस्तियों के मूल्य पर उद्गृहीत किया जाता है। सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर का उद्ग्रहण करने के प्रयोजनार्थ राज्य विधानमण्डल कर के आपतन का अवधारण करने के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपना सकता है किन्तु कर दायित्व के अवधारण के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य के अपनाए जाने से हमारी राय में उक्त दोनों प्रविष्टियों के अधीन विधान बनाने के क्षेत्र अतिव्यापी नहीं हो जाएंगे।

172. अतः यह बहुत स्पष्ट है कि सम्पूर्ण बहस इस धारणा के आधार पर की गई थी कि शुद्ध धन पर कर का अधिरोपण सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन न्यायोचित था। निर्धारिती की दलील यह थी कि भूमियों और भवनों का मूलधन मूल्य प्रविष्टि 49

1971(10) eILR(PAT) SC 1

के अन्तर्गत आएगा और इसलिए वह राज्य के विधान के अनन्य क्षेत्र के अन्तर्गत आएगा। न्यायालय ने इस दलील को यह अभिनिर्धारित करते हुए नामंजूर कर दिया कि शुद्ध धन पर कर की धारणा में न केवल आस्तियों का मूल्य शामिल है बल्कि उसमें से निर्धारिती का अपने ऋणों का संदाय करने का साधारण दायित्व अपवर्जित है, वह धारणा भूमियों और भवनों पर लगने वाले कर की धारणा से बिल्कुल भिन्न है। विधान की विषय-वस्तु की पहचान करने के लिए यही उचित रास्ता था अर्थात् कि उद्ग्रहण का 'व्यष्टि' की आस्तियों के संकलित मूल्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु उसका सम्बन्ध उस शुद्ध मूल्य से था जिसका अवधारण उसके द्वारा धृत आस्तियों के कुल मूल्य से उसके दायित्वों को घटा कर किया जाना था।

173. **नगर भूमि कर सहायक आयुक्त, मद्रास बनाम बंकिघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लिमिटेड** (1) में अन्य बातों के साथ-साथ 1966 के मद्रास ऐक्ट 12 को उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 और 19(1)(च) का अतिक्रमण करता है। इस न्यायालय के समक्ष निर्धारिती की ओर से अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई थी कि आक्षेपित ऐक्ट सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत आता है न कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अन्तर्गत और चूंकि प्रविष्टि 49 में भूमियों और भवनों पर कर परिकल्पित है इसलिए आक्षेपित ऐक्ट के, जिससे भूमि पर कर अधिरोपित किया गया था, बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वह उस प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है। प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि 'आक्षेपित ऐक्ट प्रारूपतः और सारतः मूलधन पर कराधान है और इसलिए वह राज्य विधानमण्डल की सक्षमता के बाहर है'। यह भी कहा गया था कि 'आस्तियों के मूलधन या मुख्य मूल्य के आधार पर कर लगाना संसद् को सूची 1 की प्रविष्टि 86 और 87 के अधीन और राज्य को सूची 2 की प्रविष्टि 48 के अधीन अनुज्ञेय है। प्रविष्टि 86 और 88 के अधीन कराधान ऐसी प्रविष्टियों का समूह है जिनकी स्कीम संविधान के अनुच्छेद 39 (ग) के निदेशात्मक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना था और मूलधन या प्रमुख मूल्य पर कराधान की पद्धति अन्य करों के सम्बन्ध में संसद् के लिए और सिवाय कृषि भूमि पर सम्पदा शुल्क के सम्बन्ध में राज्यों के लिए प्रतिषिद्ध थी। इस बात को न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए नामंजूर कर दिया (देखिए पृष्ठ 158)—

> " x x x x इस उपधारणा के लिए कोई भी आधार नहीं है कि सूची 1 की प्रविष्टि 86, 88 और सूची 2 की प्रविष्टि 48 को मिलाने पर ऐसा विशेष समूह बन जाता है जो किसी विशिष्ट योजना का निरूपण करने वाला हो। x x x विधायी प्रविष्टियों का निर्वचन व्यापक और उदारतापूर्ण होना चाहिए। जिसका कारण यह है कि सूचियों में विषयों का जो वितरण किया गया है वह किसी वैज्ञानिक या तर्कसंगत परिभाषा का अनुसरण करने वाला नहीं है बल्कि बड़ी-बड़ी कोटियों की साधारण संगणना मात्र है। इसलिए यह मानने का कोई कारण हमें नहीं दिखाई देता कि सूची 1 की प्रविष्टि 86 और 87 सूची 2

(1) (1970) 2 उम० नि० प० 141=(1970) 1 एस० सी० आर० 268.

1971(10) eILR(PAT) SC 1

की प्रविष्टि 49 के अधीन भूमियों और भवनों के मूलधन मूल्य पर कर लगाने से राज्य विधानमण्डल को प्रविरत करती है।

न्यायालय ने आगे यह कहा—

"हमारी राय में सूची 1 प्रविष्टि 86 और सूची 2 की प्रविष्टि 49 के बीच कोई विरोध नहीं है। दोनों प्रविष्टियों के अधीन कराधान के आधार बिल्कुल अलग-अलग हैं। जहां तक सूची 1 की प्रविष्टि 86 का प्रश्न है कराधान का आधार आस्ति का मूलधन मूल्य है। मूल्यांकन की तारीख को व्यक्तियों और कम्पनियों की आस्तियों के मूलधन मूल्य पर यह कर प्रत्यक्ष रूप से लगाया जाने वाला कर नहीं है। यह कर निर्धारिती की आस्तियों के धारकों पर अधिरोपित नहीं है। प्रविष्टि 86 के अधीन वाला कर संकलन के सिद्धान्त पर आधृत है और सभी आस्तियों के समग्र मूल्य पर अधिरोपित किया जाता है। यह कर उन कुल आस्तियों पर अधिरोपित किया जाता है जो निर्धारिती के स्वामित्वाधीन हैं और शुद्ध धन अवधारित करने में न केवल आस्तियों की किसी मद से विनिर्दिष्टत: धारित विल्लंगम वरन् अपने ऋणों का संदाय तथा अपनी विधिपूर्ण बाध्यताओं का निर्वहन करने के सम्बन्ध में निर्धारिती का सामान्य दायित्व भी हिसाब में लिया जाना है। × × × × किन्तु सूची 2 की प्रविष्टि 49 में कर का उद्ग्रहण भूमि और भवनों पर अथवा इकाई के रूप में दोनों पर परिकल्पित है। जिन भूमियों या भवनों पर कर लगाया जाता है उनकी इकाइयों में हित या स्वामित्व के विभाजन के साथ उसका कोई सरोकार नहीं है। भूमियों और भवनों पर कर भूमियों और भवनों पर सीधे-सीधे अधिरोपित किया जाता है और उनके साथ उसका निश्चित सम्बन्ध होता है। आस्तियों के मूलधन मूल्य पर कर का उन भूमियों और भवनों के साथ जो निर्धारिती की कुल आस्तियों का कुल घटक हो सकते हैं, कोई परिनिश्चित सम्बन्ध नहीं होता है। × × × सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन कर उद्गृहीत करने के प्रयोजन के लिए राज्य विधानमण्डल कर का भार अवधारित करने के प्रयोजन के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपना सकता है। किन्तु कर का दायित्व अवधारित करने के लिए भूमियों और भवनों के वार्षिक या मूलधन मूल्य को अपनाने से दोनों प्रविष्टियों के अधीन विधान के क्षेत्र अतिव्यापी नहीं हो जाएंगे। दोनों कर अपनी मूलभूत कल्पना में एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं और अलग-अलग विषय क्षेत्रों के अन्तर्गत आते हैं।"

174. **श्रीपृथ्वी काटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **बड़ौच नगरपालिका** (1) में जो विनिश्चय किया गया था वह **पटेलगोर्धनदास के मामले** (2) में इस न्यायालय के निर्णय का परिणाम था। उस विनिश्चय के प्रभाव को समाप्त करने के लिए गुजरात विधानमण्डल ने गुजरात इम्पोज़ीशन आफ टैक्सेज़ बाई म्यूनिसिपैलिटीज़ (वैलीडेशन) ऐक्ट, 1963 पारित

(1) (1970) 2 उम० नि० प० 302=(1970) । एस० सी० आर० 388.
(2) (1964) 2 एस० सी० आर० 608, 632.

किया जिसमें कर के अधिरोपण को विधिमान्य करने तथा उन आधारों पर जिन पर नियम 350-ए का अर्थान्वयन किया गया था, ऐक्ट के किसी भावी निर्वचन से बचने का प्रयास किया गया था। ऐक्ट की धारा 3 भूमियों और भवनों पर मूलधन मूल्य या मूलधन मूल्य की प्रतिशतता के आधार पर पिछले निर्धारणों और रेटिंग के संग्रहण तथा वैलीडेशन ऐक्ट के पारित किए जाने के पूर्व किए गए सही निर्धारण को विधिमान्य बनाने के लिए पारित की गई थी। उसी समय गुजरात म्युनिसिपैलिटीज़ ऐक्ट की धारा 99 भूमियों और भवनों पर ऐसे कर का उद्ग्रहण करने के लिए उपबन्ध करने के लिए अधिनियमित की गई थी जो 'वार्षिक भाटक मूल्य या मूलधन मूल्य या भवनों या भूमियों या दोनों के मूलधन मूल्य की प्रतिशतता पर आधारित हों'। न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि क्या विधान-मण्डल भूमियों और भवनों पर उनके मूलधन मूल्य की प्रतिशतता के आधार पर कर अधिरोपित करने वाली विधि पारित करने के लिए समक्ष था। न्यायालय ने यह कहा कि अपीलार्थियों के काउन्सेल ने यह स्वीकार किया है कि म्युनिसिपैलिटीज़ ऐक्ट की धारा 99 सूची 2 की प्रविष्टि 49 के अधीन अनुज्ञेय विधान है। न्यायलय ने यह मत व्यक्त किया—

> "सूची 1 की प्रविष्टि 86 से जो संदेह पैदा हो गया था वह **सुधीर चन्द्र नॉन** ([1]) के मामले में किए गए विनिश्चय के पश्चात् अब विद्यमान् नहीं है। जैसा कि उस मामले में अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रविष्टि 86 के अधीन कर भूमियों और भवनों पर प्रत्यक्ष कर नहीं है बल्कि वह शुद्ध आस्तियों पर कर है इसलिए राज्य विधानमण्डल भूमियों और भवनों पर यूनिटों के रूप में, उद्ग्रहण की पद्धति इंगित करते हुए, जिसके अन्तर्गत मूलधन मूल्य की प्रतिशतता पर आधारित पद्धति आती है, कर उद्गृहीत कर सकता है।"

धन-कर के अधिरोपण के सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों में सभी मामलों में की गई विस्तृत बहस और दलीलों से यह स्पष्ट हो जाता है कि धन-कर अधिनियम पर आक्रमण करने का मुख्य आधार यह था कि 'हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब' 'व्यष्टि' नहीं हैं और उन्हें सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अधीन प्रत्यक्षतः या उक्त सूची की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 की सहायता से कर नहीं लगाया जा सकता। अधिकांश मामलों में विद्वान् न्यायाधीशों ने यह महसूस नहीं किया कि उनसे प्रविष्टि 97 के लागू किए जाने के सम्बन्ध में राय अभिव्यक्त करने के लिए अपेक्षा की गई थी। केरल उच्च न्यायालय में **मोहम्मद केयी** ([2]) के विनिश्चय को छोड़कर अनुच्छेद 248 के साथ पठित इस प्रविष्टि के प्रविषय के बारे में बहुत कम बताया गया है। जब यह विषय पहली बार **बनारसी दास के मामले** ([3]) में प्रभावशील रूप से इस न्यायालय के समक्ष आया उस समय न्यायाधीशों ने यह विचार नहीं किया कि 'व्यक्तियों' शब्द के अभिधान के विषय में, जिस पर अपीलार्थियों ने अवलम्ब किया था, विधायी इतिहास वस्तुतः प्रविष्टि 86 में 'व्यक्तियों' शब्द के अर्थान्वयन में कोई तात्विक सहायता देगा। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रविष्टि 86 में 'व्यक्तियों'

([1]) (1968) 2 उम० नि० प० 794=(1969) 1 एस० सी० आर० 108.

([2]) 44 आई० टी० आर० 277.

([3]) (1965) 2 एस० सी० आर० 355.

शब्द के अन्तर्गत हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब आते हैं जैसा कि अनेक उच्च न्यायालयों का दृष्टिकोण रहा है।

175. आदर सहित हम यह बताना चाहते हैं कि उन मामलों में से किसी भी मामले में कर अधिरोपित करने वाले विधान की विषयवस्तु को उचित रूप से बतलाने और यह अभिनिश्चित करने के लिए कोई गम्भीर रूप से प्रयत्न नहीं किया गया था कि क्या आस्तियों के मूलधन मूल्य से वही बात अभिप्रेत है जो धन कर अधिनियम में शुद्ध धन की परिभाषा में कही गई है। ऊपर उद्धृत विभिन्न विनिश्चयों और प्रमाणों से, जिनका 'आस्तियों के मूलधन मूल्य' अभिव्यक्ति के सही अर्थान्वयन से सम्बन्ध है, यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि उससे केवल आस्तियों का ऐसा बाजार मूल्य, जिसमें से उस पर प्रभारित विल्लंगम (इन्कम्बरेसेज) घटा दिए गए हों, अभिप्रेत है। इस अभिव्यक्ति में न तो उन सम्पत्तियों की मलकीयत रखने वाले व्यष्टियों के साधारण दायित्वों या विशिष्टतया उनके सम्बन्ध में देय ऋण नहीं आते हैं। मेरे विचार से धन-कर अधिनियम द्वारा विधान की विषयवस्तु प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं बल्कि सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आती है। किसी व्यष्टि की आस्तियों का मूलधन मूल्य उसके शुद्ध धन से उतना ही भिन्न है जितना कि किसी कारबार की विक्रय आस्तियों का बाज़ार मूल्य गुडविल की उपेक्षा करते हुए चालू समुत्थान के रूप में उसके मूल्य से भिन्न है। जब किसी कारबार का चालू समुत्थान के रूप में मूल्यांकन किया जाता है तब उसकी आस्तियों और दायित्वों को, चाहे वे नियत आस्तियों पर प्रभारित हों या न हों, लेखे में लिए जाना होता है किन्तु कारबार की मूर्त आस्तियों का मूल्य संगणित करते समय उसकी आस्तियों पर विल्लंगमों से भिन्न कारबार के साधारण दायित्व को लेखे में नहीं लिया जाता। प्रविष्टि 86 का कैसे उपयोग किया जा सकता है इसकी परिकल्पना हमें नहीं करनी है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोफेसर कालडोर का दृष्टिकोण, जैसा कि इण्डियन टैक्स रिफार्म पर उनकी रिपोर्ट (अध्याय 2) में अभिव्यक्त किया गया है, यह है कि धन पर वार्षिक कर प्रोद्भूति पर कर होना चाहिए न कि स्वयं मूल पर कर होना चाहिए। उसने यह सुझाव दिया था कि कर क्रमांकित रूप से सबसे निचले खण्ड पर बहुत ही कम दर पर लगाया जाना चाहिए जिससे कि कोई निर्धारिती आय कर दायित्व और धन-कर दायित्व को बिना किसी कठिनाई के पूरा कर सकें। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि उसके दृष्टिकोण से कृषि भूमि पर धन के रूप में कर संविधान के संशोधन के परिणामस्वरूप ही लगाया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार ने प्रोफेसर कालडोर के सुझाव के अनुसार कार्य नहीं किया है। सम्भवत: सूची 1 की प्रविष्टि 86 का उपयोग आपात (एमर्जेन्सी) में या किसी किसी व्यक्ति की आस्तियों पर, उसके पास कृषि भूमि कितनी है उसका विचार किए बिना, सीमान्तरीय अधिरोपण (मार्जिनल इम्पोजिशन) के रूप में पूंजी उद्ग्रहण करने के लिए किया जा सकता है। यदि यह भी धारणा करली जाए कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 में भूमियों और भवनों पर, उनके मूलधन मूल्य पर कुछ प्रतिशतता का ढंग अपना कर, करों का अधिरोपण अनुध्यात है तो भूमियों और भवन यूनिटों के रूप में कराधान के अध्यधीन होंगे और उनका संकलन सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य विधानमण्डल ऐसा कर उद्गृहीत करने के लिए सक्षम नहीं है जो राज्य के बाहर स्थित भूमियों और भवनों के रूप में व्यष्टियों की आस्तियों के सम्बन्ध में होगा।

1971(10) eILR(PAT) SC 1

176. कृषि भूमियों आदि को सम्मिलित या अपवर्जित करके धनकर की विषय-वस्तु संविधान के अनुच्छेद 246 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 86 के अन्तर्गत नहीं आती है बल्कि अनुच्छेद 248 के साथ पठित सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत आती है। यद्यपि प्रविष्टि 97 को अकेले पढ़ा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि उससे यह सुझाव मिलता है कि 'कोई अन्य विषय' अभिव्यक्ति सूची 1 की अन्य प्रविष्टियों के प्रति निर्देश करती है। अनुच्छेद 248(1) से यह बिना किसी सन्देह के स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे विषय वे विषय हैं जो सूची 2 या सूची 3 की प्रविष्टियों के अन्तर्गत नहीं आते। संविधान में संघ को कृषि भूमि सहित धनकर उद्गृहीत करने की शक्ति देने से इन्कार नहीं किया गया है जैसा कि प्रत्यर्थियों की ओर से दलील दी गई है।

177. विधान बनाने का अवशिष्ट क्षेत्र अब रिक्त नहीं रह गया है और इसके अन्तर्गत अनेक विधान बनाए जाने की क्षमता विद्यमान है। इससे पहले ही लाभदायक कराधान के स्रोत प्राप्त हो चुके हैं जैसे कि दानकर अधिनियम, व्यय कर अधिनियम तथा वार्षिकी निक्षेप की स्कीम के अधीन उधार लेना आदि।

178. इस विषय पर ऊपर अभिव्यक्त दृष्टिकोण से हमारे संविधान के अधीन और ब्रिटिश नार्थ अमेरीका ऐक्ट, 1867 की धारा 91 और 92 के अधीन विधायी शक्ति के वितरण की स्कीम में जो बातें एक समान हैं उन पर विचार करना आवश्यक नहीं है और न ही इस बात पर विचार करना सुसंगत है कि क्या सूची 1 की प्रविष्टि 86 में 'कृषि भूमि को छोड़कर' शब्द अपवर्जन के शब्द हैं न कि प्रतिषेधात्मक शब्द हैं।

179. अत: मैं अपील मंजूर करता हूं और उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करता हूं, किन्तु खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

आदेश

बहुमत निर्णय के अनुसार अपील मंजूर की जाती है। खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील मंजूर कर ली गई।

दे०/वि०